हरिवंश-पुराण (१८ हज़ार श्लोक-कथा)

पं० भगवानदास अवस्थी, एम० ए०

श्रीमद्भा-
रामायण

के सम्बन्ध में इतने बड़े-बड़े विद्वान् क्या

महामना पं० मदनमोहन मालवीय

" भागवत तथा धर्म-ग्रथों को निकालकर आप बडे पुण्य और देशहित का कार्य कर रहे हैं। पुस्तकें बहुत सुन्दर निकली हैं। इनसे लोगों का बडा कल्याण होगा।"

पं० अमरनाथ झा, एम्० ए०

[वाइस-चान्सलर, प्रयाग-विश्वविद्यालय]

" इन ग्रथों को लिखकर आपने जनता का बड़ा उपकार किया है। जिनको सस्कृत का ज्ञान है वे भी इन पुस्तकों की सहायता ले सकते हैं। बच्चे और बूढ़े सभी आपकी सरल भाषा से प्रभावित होंगे।... ..."

बा० पुरुषोत्तमदास टण्डन, एम. ए., एल-एल. बी.,

" ..श्री भगवानदास अवस्थी जी ने इन ग्रंथों के जो सस्करण निकाले हैं वे सभी लोगों के लिए लाभदायक और बहुत उपयोगी हैं। .."

कविसम्राट पं०अयोध्या सिहजी उपाध्याय,'हरिऔध',

"... वास्तव में अनुवाद योग्यता से किया गया है और जटिल स्थानों को भी बोध-गम्य बना दिया गया है।..."

चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा, एफ०आर०ए०एस०

"...आपने मूल ग्रंथों का बहुत ही सच्चा और न्यायपूर्ण अनुवाद किया है। जो इन्हें एक बार पढ़ जायगा उसे इन महत्वपूर्ण ग्रंथों की सारी बातें हस्तामलकवत् स्पष्ट हो जायँगी।..."

श्रीकृष्ण जोशी, विद्याभूषण, बी. ए., एल-एल. बी.

[धर्मशिक्षाचार्य, काशी-विश्वविद्यालय]

"....यह सब अनुवाद जितने सत्य हैं उतने ही सरल भी हैं। बालक से वृद्ध पर्यन्त सबके लिए उपयोगी हैं। मेरे घर में इन ग्रंथों को बार-बार बालकों तथा स्त्रियों तक ने ऐसे चाव से पढ़ा कि महीनों वे उन्हीं के पास रहे।... ...मैंने इन पुस्तकों का अपने व्याख्यानों में भी प्रयोग किया है।"

सम्पादक 'सरस्वती', 'हल', 'बालसखा'

"....अब तक इन महत्वपूर्ण ग्रन्थों को इतनी सरल, सरस और प्रभावोत्पादक भाषा में कोई प्रकाशित नहीं कर सका। स्त्रियाँ, बालक तक इनका आनन्द ले सकते हैं।...."

नागरीप्रचारिणी सभा, काशी

...हिन्दी में ऐसी पुस्तकों की बहुत दिनों से बड़ी आवश्यकता थी। हमारी संस्कृति को जानकारी के लिए साधारण जनता के लिए ऐसी पुस्तकें बहुत आवश्यक हैं।......

हरिवंश-पुराण

(१८ हजार श्लोकों, ३२५ अध्यायों की समस्त कथाएँ)

प्रणेता
अनेकानेक ग्रंथो के रचयिता
पं० भगवानदास अवस्थी एम० ए०

प्रकाशक
ज्ञानलोक
प्रयाग

प्रथमबार] मूल्य ११)

प्रकाशक
ज्ञानलोक
प्रयाग

मुद्रक
श्रीगिरिजाप्रसाद श्रीवास्तव,
हिन्दी साहित्य प्रेस, प्रयाग

आत्म-निवेदन

हरिवंश-पुराण महाभारत का एक अंश है, एक अविच्छिन्न भाग। और महाभारत रत्नो का महासागर है, पाँचवाँ वेद है। हिन्दू-धर्म, हिन्दू-समाज की कौन सी ऐसी बात, कौन-सी ऐसी समस्या है जो महाभारत से न मिले।

आज, इस बीसवीं शताब्दी में भी, धर्म-प्राण हिन्दू जनता को वहुत कुछ आवश्यक और उचित शिक्षा अपने प्राचीन ग्रथों से मिल सकती है। हिन्दू समाज जीवनी शक्ति-संचार करने वाले ज्ञान और धर्म को इनके द्वारा समझ सकता है। इनके अध्ययन से पता चलेगा कि हिन्दू क्या-कैसे थे और क्यो, वे क्या-कैसे होते गये और किन कारणों से, धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक वातो मे किस प्रकार और क्यो परिवर्तन होते गये और उनका क्या प्रभाव पडा। सशक्त, सफल, सुख-समृद्धशाली हिन्दुओ के क्या-कैसे आदर्श, आचार-व्यवहार, रीति-नीति, धार्मिक-सामाजिक सिद्धान्त और आचरण रहे हैं। इसी कारण मैं हिन्दू धर्म के इन प्रमुख ग्रंथो को इस रूप मे हिन्दी-संसार के समक्ष रखने का साहस कर रहा हूँ।

यदि धर्म-प्राण हिन्दू-जनता अपने पूर्व काल की सफलता-समृद्धि के मूल कारण और इधर हजारो वर्षों से चली आनीवाली अनेक प्रकार की पराजय और अवनति के प्रमुख कारणो को इन ग्रंथो के पारायण से भली प्रकार जान सकी और धर्म के यथार्थ तत्वो को समझ कर, धर्म के नाम पर प्रचलित होने वाली विनाश कारी रूढ़ियो से अपना पीछा छुड़ाकर, प्राचीन आदर्शों को सामने रख धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक अभ्युन्नति की ओर अग्रसर हो सकी, तो मैं अपने इस प्रयास को सफल समझूँगा।

दारागंज, प्रयाग
७-८-१९४१
(रक्षा वन्धन)

भगवानदास अवस्थी

हरिवंश-पुराण

विषयानुक्रमणिका

हरिवंश-पर्व (प्रारम्भ से ६० पृष्ठ तक)

आदि-सर्ग कथन; दक्षोत्पति वर्णन; मरुतोत्पत्ति वर्णन; पृथू-पाख्यान वर्णन, पृथूपाख्यान और पृथ्वी कूटन, मनु वर्णन; मन्वन्तरानुकीर्तन, द्वादश आदित्यों का जन्म, ऐलोत्पत्ति; धुन्धुवध; गालवोत्पत्ति, त्रिशकु चरित्र; सगरोत्पत्ति; आदित्य वंश, पितृकल्प, श्राद्धफल; चटख आख्यान; सोमोत्पत्ति; अमावसु वश, आयु वश; काश्यप वश, ययाति चरित्र; पुरु वंश, यदु-वश, कार्तवीर्यार्जुनोत्पत्ति; वृष्णि वंश, कृष्ण जन्म, जनमेजय वश, कुक्कुर वंश, श्रीकृष्ण को मिथ्याभिशाप, स्यमन्तक के निमित्त श्रीकृष्ण का शतधन्वा को मारना, वराह उत्पत्ति; योगेश्वर रूप विष्णु का अवतार, विष्णु के ईश्वरत्व का वर्णन; दैत्यसेना का विस्तार, देवसेना का विस्तार; देवासुर-सग्राम, दैत्यो का देवताओ से विकल होना, कालनेमि और देवताओ का युद्ध; विष्णु का देवताओ को धैर्य देना और ब्रह्मलोक को जाना, जन-मेजय का वैशम्पायन से विष्णु विषयक प्रश्न करना; पृथ्वी के दुःख से दुःखी हो ऋषियों का ब्रह्मलोक में जाना; विष्णु-देव-

संवाद; पृथ्वी की प्रार्थना; देवताओ का अंशावतार; नारद वाक्य; ब्रह्मवाक्य।

हरिवंश पर्व समाप्त

विष्णु-पर्व (पृष्ठ ६१ से पृष्ठ १२८ तक)

नारद प्रति कंस वाक्य; विष्णु की योगनिद्रा, आर्यास्तव; कृष्ण-जन्म, व्रज-गमन, शकटासुर-पूतना-वध; यमलार्जुन-भंग; वृक दर्शन; बाललीला वर्णन; श्रीकृष्ण का वृन्दावन गमन, वर्षा ऋतु वर्णन; कालिय दह; कालिय दमन; धेनुकासुर वध; प्रलम्ब वध; घोष वाक्य; शरद ऋतु; गोपकृत गिरि-उत्सव; गोवर्धन धारण; गोविन्दाभिषेक-हल्लीस क्रीड़ा—अरिष्ट वध; अक्रूर प्रस्थान वर्णन; अन्धक वाक्य; केशी वध; अक्रूर-आगमन; अक्रूर का नागलोक दर्शन; धनुर्भंग; कंस वाक्य; कुवलयापीड़ वध; कंस वध; कंस-स्त्री-मिलाप; कंस का मृतक संस्कार; उग्रसेन का अभिषेक; कृष्ण के प्रति सब का आगमन; मथुरा मे जरासंध का युद्धार्थ आगमन; जरासन्ध-श्रीकृष्ण-युद्ध; जरासन्ध-प्रयाण; विकद्रु वाक्य; परशु-राम-वाक्य; गोमन्तारोहण; जरासन्धाभिगमन; जरासन्ध से पुनः युद्ध; गोमन्त-दाह; करवीरपुर गमन, शृगाल-वध, मथुरा मे पुनरा गमन; यमुनाकर्षण; रुक्मिणी-स्वयंवर; सुनीथ-वाक्य; रुक्मिणी स्वयंवर मे नृप आश्वासन वर्णन; कृष्णाभिषेक; कृष्ण-राजेन्द्र; शाल्व वाक्य; कालयवन आगमन; मंत्रोदाहरण; द्वारावती प्रयाण; रुक्मिणी-हरण, कालयवन-वध; द्वारावती निर्माण; रुक्मि वाक्य,

रुक्मि वध, वलदेव-महात्म्य; भौमासुर (नरक) वध; पारिजात-हरण, पारिजात हरण में नारद कृष्ण-भाषण; इन्द्र वाक्य; नारद का स्वर्ग से आगमन, रुद्रस्तोत्र, कृष्ण-इन्द्र युद्ध, कृष्णकृत शिव-स्तुति, पारिजात-आनयन, स्वर्ग में पारिजात स्थापन, पुण्यक विधि, उमाव्रत कथन, पटपुर-वध; कृष्ण का षटपुर गमन; अन्धक-वध, भानुमती-हरण, छालिक्य क्रीडा, निकुम्भ-वध, वज्रनाभ वाक्य; प्रद्युम्नोत्तर, प्रद्युम्नगमन, प्रभावत का गंधर्व विवाह, प्रद्युम्न-वज्रनाभ युद्ध, वज्रनाभ-वध, द्वारका विशेष निर्माण-एव प्रवेश, सभा प्रवेश, नारदवाक्य, वृष्णि वशानुकीर्तन, शम्बर-वध, प्रद्युम्न का शम्बर को मारकर रति सहित द्वारका मे आना, बलदेव द्वारा आत्मिक स्तोत्र, धन्योपाख्यान, वासुदेव माहात्म्य, वासुदेव महात्म्य में कृष्ण-उदीपी गमन, वासुदेव माहात्म्य में ब्रह्मण पुत्र का हरण, कृणार्जुन सम्वाद, बाणयुद्ध, उपा-विरह, चित्रलेखा का द्वारका में जाना, बाणअनिरुद्ध युद्ध, अनिरुद्ध कृत आर्यास्तव, कृष्ण-प्रयाण, कृष्ण-ज्वर युद्ध, ज्वर सवाद, रुद्र-कृष्ण युद्ध, हरिहरात्मकस्तव, बाणासुर वर प्रदान, द्वारकागमन, उषा-अनिरुद्ध विवाह।

विष्णु-पर्व समाप्त

भविष्य पर्व (पृष्ठ १२६ से पृष्ठ २४० तक)

हरिवश वर्णन, जनमेजयवश वर्णन, भविष्य वर्णन; भविष्य वर्णन, विश्वावसुवाक्य; महात्माओं के चरित्र; पुष्कर प्रादुर्भाव,

मार्कण्डेय दर्शन; ब्रह्मा की उत्पत्ति; पद्म-रूप; मधुकैटभ-वध; सर्व भूतों की उत्पत्ति; जनमेजय वाक्य; सनातन ब्रह्म; शुभाशुभ कर्मों का फल; ब्रह्मा के अग से प्राणियों की उत्पत्ति; चत्रयुग का वर्णन; प्रकृत्यात्मक यज्ञादि रूप धर्म; ब्रह्मा का यज्ञ; ब्राह्मणो के कर्म; मधुदैत्य से बिष्णु का युद्ध ? मधु के वध से देवताओ का प्रसन्न होना; देवताओ का तप; प्रत्येक देवताओ के शस्त्र; समुद्र संथन; वलिको छलना; पुष्कर प्रादुर्भाव; वराह प्रादुर्भाव; वराह जी का पृथ्वी को रसातल से लाकर स्थापित करना; वराह-जगत-सर्ग; ब्रह्माजी का जगत मे सबका पृथक-पृथक स्वामी नियत करना; हिरण्याक्ष और देवताओ का युद्ध; वराह भगवान का हिरण्याक्ष को मारना; विष्णु का यथोचित देवताओ को स्थान देना; नृसिंहावतार; हिरण्याक्ष का दैत्यो से पूजित हो राज्य सिहासन पर बैठना; नृसिंहजी को देखकर दैत्यो का आश्चर्य करना, नृसिंहजी का दैत्यो की माया को नष्ट करना; युद्ध देख देवताओं का विकल होना; हिरण्यकशिपु का वध वर्णन; ब्रह्माजी का नृसिंहजी की स्तुति करना, हिरण्यकशिपु का वध होने से दैत्यो का वलि को राज्य देना। दैत्यो का संग्राम के निमित्त स्वर्ग को जाना; दैत्य सेना का विस्तार वर्णन; देव-दैत्य-युद्ध; महा घोर युद्ध; वृत्रासुर का अश्विनीकुमार का जप करना; वामन प्रादुर्भाव, देवासुर-संग्राम, देवासुर-संग्राम मे इन्द्र का प्रयाण करना; देवासुर-संग्राम वर्णन, दैत्यो की जय; देवताओ का ब्रह्म लोक में जाना और तप करना, महापुरुष स्तव; वामन अवतार;

विष्णु-रूप-प्रकाश; वामन प्रादुर्भाव; श्रीकृष्ण की कैलाश यात्रा; घटाकर्ण समाधि, घटाकर्ण को विष्णु दर्शन, घटाकर्ण कृत-विष्णुस्तव, घंटाकर्ण का मोक्ष, कैलाश यात्रा, इन्द्र का आगमन; महादेव का आगमन, ईश्वर-स्तुति, विष्णुस्तव; ऋषि उपदेश, कृष्ण का प्रत्यागमन वर्णन; रुद्र द्वारा स्तुति, पौण्ड्रक का कृष्ण की निन्दा करना, पौण्ड्रक-नारद सवाद, पौण्ड्रक का द्वारका में आगमन; रात्रि-युद्ध, कृष्ण-पौण्ड्रक युद्ध, यति भोजन, हंस-डिम्भको-पाख्यान, हस का श्रीकृष्ण के पास द्वारका में ब्राह्मण भेजना; जनार्दन विप्र की कृष्ण से वार्ता, कृष्ण वाक्य; हंस-वाक्य; सात्यकि-वाक्य, सात्यकि-गमन, श्रीकृष्ण का पुष्कर-गमन; सकुल युद्ध; विचक्र वध, सात्यकि डिम्भक युद्ध, डिम्भ-वध; श्रीकृष्ण का वैष्णवास्त्र छोडना, हस-वध; डिम्भक-मरण, यशोदा-नन्दन-गोप-बलभद्र-कृष्ण समागम; कृष्ण का द्वारका में आना; सर्व पर्वानुकीर्तन; त्रिपुर वध, हरिवंश वृत्तान्त सग्रह, हरिवंश श्रवण फल कीर्तन, हरिवश की कथानुक्रमणिका।

विषयानुक्रमणिका समाप्त

हरिवंश-पुराण

हरिवंश-पर्व

अध्याय १

आदिसृष्टि का वर्णन

श्रीगणेशाय नमः। श्रीनारायण, नर, नरोत्तम एवं सरस्वती देवी को नमस्कार कर ग्रंथ का प्रारंभ करना चाहिए। जो उत्तम कथा को सुनते हैं उन्हें पुष्करादि तीर्थों में स्नान करने की आवश्यकता नहीं रह जाती।

नैमिषारण्य में कुलपति शौनकजी ने वृष्णि और अंधक वंशों की कथा कहने के लिए सूतजी से अनुरोध किया। सूतजी ने कहा कि महाभारत की सम्पूर्ण कथा को सुन लेने के बाद जनमेजय ने वैशम्पायनजी से वृष्णि और अंधक वंशों की कथा विस्तार से कहने का आग्रह किया था। तब वैशम्पायनजी बोले—'आदि में सब निरा-

कार था। परब्रह्म परमात्मा ने सृष्टि की कामना की। तब ब्रह्माजी की उत्पत्ति हुई। ब्रह्माजी ने पृथ्वी, दिशा, काल आदि की रचना के अनन्तर मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वशिष्ठ इन सात महर्पियों को एवं रुद्र, सनत्कुमार को उत्पन्न किया। फिर यज्ञ-सिद्धि के लिए ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद को प्रकट किया। फिर उपस्थेन्द्रिय से मनुष्यों की, जंघाओं से असुरों की, रचना की। जब इतने पर भी प्रजा की वृद्धि न हो सकी तब ब्रह्माजी ने अपने शरीर के दो भाग किये। उनके शरीर के एक भाग से पुरुप और दूसरे से स्त्री का प्रादुर्भाव हुआ। इसके बाद जल, स्थल आदि प्राणियों से व्याप्त हो गये। विष्णु ने विराट् को रचा और विराट ने पुरुष की रचना की। उसी पुरुष को मनु कहते हैं। उसी से मन्वन्तर कहलाया और उसीसे प्रजा की उत्पत्ति हुई।'
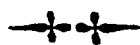
अध्याय २

दक्षोत्पत्ति

वैशम्पायनजी बोले--'इतनी सृष्टि के पश्चात् धर्म से उत्पन्न शतरूपा ने घोर तपकर दिव्य स्वयंभुव मनु को पति

रूप में प्राप्त किया। उनसे वीर सुत का जन्म हुआ। उनसे प्रियव्रत और उत्तानपाद की उत्पत्ति हुई। प्रियव्रत ने वशिष्ठजी की कन्या में सम्राट्, कुत्ति, विराट और प्रभु नामक चार पुत्र उत्पन्न किये। उत्तानपाद ने कर्दम की कन्या सुनीता से ध्रुव, कीर्तिमान आदि को उत्पन्न किया। ध्रुव ने घोर तप के द्वारा सप्तर्षियों के आगे दिव्य अचल पद प्राप्त किया। ध्रुव के रिपु, रिपुञ्जय आदि पाँच पुत्र हुए। इन्हीं के वंश में आगे अंग ने मृत्यु की कन्या सुनीथा से वेन को उत्पन्न किया। वेन ने देवता, यज्ञ तथा धर्म और ऋषियों का विरोध किया। ऋषियों ने प्रजा के कल्याण के लिए वेन को गद्दी से उतारकर उसके शरीर को मथा। उससे पृथु उत्पन्न हुए। पृथु सबसे पहले अभिषिक्त राजा हुए और उन्होंने पृथ्वी को दुहकर तथा सुव्यवस्था करके प्रजा को परम सुखी किया। पृथु के अंतर्धान और पालित नामक दो पुत्र हुए। अन्तर्धान के हविर्धान, उनके प्राचीनबर्हि, उनके दस प्रचेता हुए। दसों प्रचेता जल में तप करने में मग्न हो गये। व्यवस्था करनेवाले राजा के न रहने से प्रजा नष्ट हो गई और पृथ्वी वृक्षों से भर गई। प्रचेतागण जब तप के अनन्तर बाहर निकले तो उन्हें वृक्ष-ही-वृक्ष देख पड़े। उन्होंने कोपकर वृक्षों को भस्म करना प्रारम्भ

किया। वनस्पति-वर्ग को इस प्रकार नष्ट होते देख चन्द्रदेव ने मारिषा नामक कन्या को देकर प्रचेताओं को शान्त किया। प्रचेताओं ने मारिषा से दक्ष नामक पुत्र उत्पन्न किया। दक्ष ने चौसठ कन्याएँ उत्पन्न कीं। उन्हीं से चन्द्रमा, सप्तर्षि, धर्म आदि ने मैथुनी सृष्टि उत्पन्न की।'

अध्याय ३

दक्ष की कन्याओं से सृष्टि, मरुत्त की कथाएँ

जनमेजय के उत्पत्ति के सम्बन्ध में पूछने पर वैशम्पायनजी बोले--'ब्रह्माजी से आज्ञा पाकर दक्ष ने मन से देव, ऋषि, गन्धर्व, असुर, यक्ष, भूत, पिशाच, पशु, पक्षी, सर्प आदि की रचना की। किन्तु मानसी प्रजा से सृष्टि की अधिक वृद्धि न हुई। दक्ष ने तब तप के अनन्तर वीरपा प्रजापति की असिक्नी नामक-कन्या से विवाह कर मैथुनी सृष्टि द्वारा हर्यश्व नामक दस हजार पुत्र उत्पन्न किये और उनसे प्रजा की वृद्धि करने को कहा। किन्तु नारद जी ने उन्हें ज्ञान का उपदेश देकर मोक्ष पद प्राप्त करा दिया। तब दक्ष ने शवलाश्व नामक एक हज़ार पुत्र फिर उत्पन्न किये। उन्हें भी नारदजी ने ज्ञानोपदेश देकर

मुक्त कर दिया। तब दक्ष ने कोप कर नारद को शाप दिया और प्रजा की वृद्धि की इच्छा से साठ कन्याओं को उत्पन्न कर उनका विवाह कश्यप, चन्द्रमा, धर्म, अंगिरा आदि के साथ कर दिया। उन्हीं कन्याओं की सन्तानों से यह सारी पृथ्वी भर गई। दक्ष की सुरभी आदि कन्याओं ने कश्यप से ग्यारह रुद्रों को उत्पन्न किया। अदिति ने देवगण, विष्णु और इन्द्र को जन्म दिया। दिति से हिरण्यकशिपु, और हिरण्याक्ष नामक परम प्रबल पुत्र एवं सिंहिका कन्या ने जन्म पाया। हिरण्यकशिपु के प्रह्लाद आदि चार पुत्र हुए। प्रह्लाद के विरोचन, उनके बलि, बलि के बाणासुर ने जन्म लिया। सिंहिका ने विप्रचित्ती के संयोग से राहु आदि को जन्म दिया। विनता ने अरुण और गरुड़ को तथा कन्द्रू ने सर्पों को जन्म दिया। कश्यप की अन्य पत्नियों ने गन्धर्व, अप्सरा, दानव आदि को उत्पन्न किया। एक बार अदिति के पुत्र देवगण ने दिति के पुत्र दानवों को युद्ध में नष्ट कर डाला। तब दिति ने अपने पति कश्यपजी की बड़ी सेवा कर उनसे इन्द्र तथा देवगण को मारनेवाला पुत्र चाहा। कश्यपजी ने उसे एक व्रत बतलाकर संयम से रहने को कहा। दिति का असाधारण तेजवाला गर्भ दिन-दिन बढ़ने लगा। अपने प्राणों को संकट में देख इन्द्र कपट-वेश रख दिति की

सेवा करने लगे। अन्त में एक दिन दिति जूठे मुख दिन में सो गई। इस मौके को उचित समझ इन्द्र उनके गर्भ में घुस गये और उन्होंने गर्भ-स्थित अपने प्रतिद्वन्दी को वज्र से काटकर सात टुकड़ों में बाँट दिया। गर्भ में सात बच्चे अलग-अलग होगये। तब इन्द्र ने एक-एक भाग के फिर सात-सात विभाग किये। किन्तु तप के प्रभाव से उस गर्भ का बालक इतना काटे जाने पर भी मरा नहीं। अन्त में ४६ मरुतों के साथ इन्द्र दिति के गर्भ से बाहर आये। अपने ४६ पुत्रों के साथ अपने गर्भ में से इन्द्र के निकलने पर दिति ने इन्द्र को भी अपना पुत्र मान लिया और उन्हीं को अपने ४६ बच्चों (मरुतों) को सौंप दिया। इस प्रकार मरुद्गण इन्द्र तथा देवगण के मित्र और शुभचिन्तक हुए।'

अध्याय ४—६

पृथु चरित, खेती, ग्राम आदि की व्यवस्था

वैशम्पायनजी बोले—'ब्रह्माजी ने पहले पृथु का राज्याभिषेक किया। इसके बाद क्रम से ब्राह्मणों, लताओं नक्षत्रों, ग्रहों, यज्ञ और तप का चन्द्रमा को; जलों का वरुण को; विश्वेदेवों का बृहस्पति को; भृगुओं का शुक्र को; आदित्यों का विष्णु को; वसुओं का अग्नि को; प्रजा

पतियों का दक्ष को; मरुतों का इन्द्र को; दैत्य-दानवों का प्रह्लाद को; पितरों का धर्मराज को; माता, व्रत, मंत्र, यक्ष राक्षस, साध्य का नारायण को; भूत, पिशाचों का शिव को; पर्वतों का हिमालय को; नागों का वासुकि को; सर्पों का तक्षक को; हाथियों का ऐरावत को; घोड़ों का उच्चैः-श्रवा को; पक्षियों का गरुड़ को; वनस्पतियों का पीपल को राजा बना कर क्रम से सब का अभिषेक किया। फिर दिग्पाल, देवगण आदि सब ने मिलकर पृथु को अपना अधिराज बनाया।

'पृथु के पूर्व वेन ने अपने को सर्वश्रेष्ठ मानकर यज्ञ हवन, तप, आदि बन्द कर दिये थे और वह अपनी ही पूजा करने लगा था। जब ऋषियों ने जाकर उसे समझा कर सन्मार्ग पर लाना चाहा, तब उसने गर्वपूर्वक कहा कि संसार में शास्त्र, वीर्य, तप, तथा सत्य में मेरे समान दूसरा कोई नहीं है। मैं जो कहता हूँ वही धर्म है, मैं जो चाहूँगा वही होगा। ऋषियों ने बहुत समझाया कि तुमने प्रजा की रक्षा और सेवा करने की प्रतिज्ञा की है, तुम अधर्म मत करो। पर वह न माना। तब ऋषियों ने उसे जबर्दस्ती पकड़कर उसकी जाँघ को मथा। उसमें से एक छोटे, काले शरीरवाला पुरुष निकला, जिस के वंशज बाद में निषाद कहलाये। इसके बाद ऋषियों ने वेन की दाहनी भुजा

को मथा। उससे परम प्रतापी तेजस्वी पृथु प्रकट हुए। वेन स्वर्ग को गया। ब्रह्माजी ने संसार के सभी प्राणियों के साथ आकर पृथु का अभिषेककर उन्हें अधिराज बनाया। सब के कहने से सूत, मागध आदि ने आशीर्वाद के रूप में महाराज पृथु की स्तुतिकर उन कार्यों का वर्णन किया जो वे भविष्य में करनेवाले थे। तब पृथुने सूत को अनूप देश और मागध को मगध देश दे दिये। तभी से सूत, मागध आदि की उत्पत्ति हुई।

'इसके अनन्तर प्रजा ने पृथु से वृत्ति (रोज़ी) माँगी। वेन के अधर्म से पृथ्वी ने सभी पदार्थों को अपने में लीन करलिया था। प्रजा पदार्थों के न मिलने से भूख तथा अभाव के कारण छीज रही थी। पृथु ने धनुष-बाण ले पृथ्वी को ललकारा। वह राजा के भय से व्याकुल होकर भागी, किन्तु देव, दानव आदि किसी ने उसे शरण न दी। तब वह फिर लौटकर पृथु की शरण में आई और उनसे दया की भिक्षा माँगने लगी। पृथु ने कहा कि लोक का अहित करनेवाली दुष्टा स्त्री भी क्षमा के योग्य नहीं होती, उसका तो वध ही करना उचित होता है। यदि किसी एक प्राणी से बहुतों को दुःख होता हो तो उस दुःख देने वाले एक प्राणी को वध करने से पाप नहीं होता, बल्कि उसे मारने से पुण्य होता है। जिन दुष्ट

प्राणियों के मारने से बहुतों का संकट दूर होता हो तो उन्हें मारना ही धर्म है, पुण्य है। राजा के वचन सुनकर पृथ्वी प्रजाके हित के कार्य करने को तैयार हो गई। तब राजा ने पृथ्वी को समतल कराया। खडड़ों और गडढ़ों को पटा दिया, ऊँचे स्थानों को काट-छाँटकर बराबर कर दिया। पहले पुर, ग्राम आदि की व्यवस्था न थी। पृथु ने बस्ती बसाई और पुर, ग्राम आदि का निर्माण किया। पृथु ने पृथ्वी को दुहकर खेती की व्यवस्था की। उसी से अन्न प्राप्त हुआ। इसके अनन्तर ऋषियों, देवों, दानवों, यक्षों, राक्षसों, नागों, सर्पों आदि सभी ने क्रम से पृथ्वी को दुहा और अपने-अपने अनुरूप पदार्थ प्राप्त किये। महाराज पृथु ने ही सब से पहले पृथ्वी को बराबरकर खेती, व्यवसाय आदिकी व्यवस्था की और ग्राम, पुर आदि बसाये, इस कारण वे ही सबके बन्दनीय हैं।'

अध्याय ७-८

मन्वन्तरों तथा कालपरिमाण का वर्णन

जनमेजय ने मन्वन्तरों और काल विभाग के संबंध में पूछा।

वैशम्पायनजी बोले—'स्वायंभुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस रैवत, चाक्षुष ये मनु बीत चुके। वैवस्वत वर्तमान हैं। सावर्णि, भौत्य, रौच्य, रौहित्य, मेरू, सावर्ण ये क्रम से आगे

आयेंगे। प्रत्येक मन्वन्तर में लोक-व्यवस्था और लोक-हित के निमित्त सप्तर्षि, मनु-पुत्र, देवता आदि भिन्न-भिन्न होते हैं। प्रत्येक मन्वन्तर में मनु के साथ ही उसके ऋषि आदि बदल जाते हैं। सहस्रयुग पर्य्यन्त इनके द्वारा प्रजा की रक्षा होती है। मनुष्य, पितर, देव आदि का काल-मान (समय की गणना) भिन्न-भिन्न होती है। तीस मुहूर्तों का एक मानवीय दिन-रात माना गया है। सूर्य जितने समय में सुमेरु की एकबार परिक्रमा कर लेता है उतने समय का मनुष्य का दिन-रात माना गया है। पन्द्रह दिन-रात का पक्ष होता है। दो पक्ष का मास, दो मास की ऋतु, तीन ऋतुओं का एक अयन और दो अयन (दक्षिणायन और उत्तरायण) का वर्ष होता है। यह मनुष्यों के समय की गणना है। मनुष्यों के एक महीने का पितरों का एक दिन-रात माना गया है, कृष्णपक्ष दिन और शुक्ल-पक्ष रात्रि। मनुष्यों के एक वर्ष के बराबर देवतों का एक दिन-रात होता है, उत्तरायण दिन और दक्षिणायन रात। मनु का एक दिन देवताओं के दस वर्ष के बराबर होता है। देवताओं के चार हजार वर्ष का सत्ययुग, चार-चार सौ वर्षों की युगसंध्या एवं संध्यांश, तीन हजार वर्षों का त्रेता, तीन-तीन सौ वर्षों की युगसंध्या एवं संध्यांश, एक हजार वर्ष का कलियुग और सौ-सौ वर्षों की युग-

संध्या एवं संध्यांश की युगसंख्या मानी गई है। इस प्रकार के चारों युगों की इकहत्तर चौकड़ी का एक मन्वन्तर होता है। ब्रह्मा के एक दिन में चौदह मनु भोग करते हैं। इसी को एक कल्प कहते हैं। ब्रह्मा की रात्रि में पृथ्वी आदि का लय हो जाता है। इस प्रकार के एक हज़ार युगों के पूर्ण होने पर निःशेष कल्प होता है। निःशेष कल्प उपस्थित होने पर प्राणिमात्र सूर्यदेव की किरणों से भस्म हो जाते हैं। तब ब्रह्मा को आगे करके आदित्य, विश्वेदेवा आदि सभी अनादि, अनन्त सर्वशक्तिमान परमात्मा में लीन हो जाते हैं। ब्रह्माजी नारायण के उदर में हजार वर्ष व्यापी रात्रि भर विश्राम करते हैं। सहस्र युग बीतने पर रात्रि समाप्त होती है। ब्रह्माजी सचेत होकर पूर्ववत फिर सृष्टि की रचना करते हैं। फिर सभी वस्तुएँ पहले की तरह ही अपने-अपने गुण, धर्म आदि के सहित प्रकाश में आती हैं। किन्तु जो सृष्टि के गुणों को त्यागकर ब्रह्म में लीन हो जाते हैं वे फिर इस तरह की सृष्टि में जन्म नहीं लेते। इसी क्रम से चराचर भूतों की रचना होती है, उनका संहार होता है और सृष्टि का क्रम चलता है। महादेव नारायण ही सब के स्वामी हैं। उन्हीं ने दुष्टों के संहार तथा सज्जनों की रक्षा के निमित्त वृष्णि वंश में अवतार लेकर जगत का कल्याण किया है। अब उन्हीं की महिमा, उन्हीं के वैभव का वर्णन करूँगा।'

अध्याय ९

विवस्वान, संज्ञा, मनु, यम आदि की कथा

वैशम्पायन जी बोले—'पूर्व समय में कश्यपजी से विवस्वान (सूर्य) प्रकट हुए। विवस्वान ने त्वष्टा की पुत्री संज्ञा से विवाहकर मनु और यम नामक पुत्र तथा यमी नामक कन्या की उत्पत्ति की। विवस्वान का तेज न सह सकने के कारण संज्ञा ने अपने शरीर से छाया नामक अपने ही समान स्त्री को उत्पन्न कर कहा कि मैं अपने पिता के घर जाती हूँ, तू मेरे स्थान पर यहाँ रहकर विवस्वान की सेवा कर, किन्तु यह भेद किसी से न कहना। संज्ञा के चले जाने पर विवस्वान ने छाया को ही संज्ञा मानकर उससे सावर्णिमनु तथा शनैश्चर को उत्पन्न किया। छाया मनु, यम आदि का निरादर करने लगी। तब एक दिन यम ने उसे मारने को पैर उठाया। छाया ने शाप दिया कि तेरा पैर गिर जाय। यम ने अपने पिता से अपने अपराध को बतलाकर क्षमा की प्रार्थना की। विवस्वान से उन्हें शाप से मुक्त कर यह व्यवस्था कर दी कि पैर में कीड़े पड़ जायँ, पर पैर अलग न हो। फिर उन्हें शंका हुई कि माता ने पुत्र को ऐसा घोर शाप क्यों दिया। अन्त में पूछने पर उन्हें सब रहस्य मालूम हो गया। अपनी

स्त्री संज्ञा को लाने के लिए वे त्वष्टा के यहाँ गये। त्वष्टा ने उनका बड़ा आदर-सत्कार किया और बतलाया कि उनके तेज को न सह सकने के कारण संज्ञा घोड़ी का रूप बनाकर कुरुक्षेत्र में तप कर रही है। त्वष्टा के समझाने पर विवस्वान अपने तेज को कम कराने के लिए तैयार हो गये। त्वष्टा ने यंत्र में चढ़ाकर उनके शरीर को सुडौल कर दिया। उनका रूप दिव्य हो गया। उनके मुख के अत्यधिक तेज से उसी समय धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, अंश, भग, इन्द्र, विवस्वान, पूषा, परजन्य, त्वष्टा तथा विष्णु नामक बारह आदित्य प्रकट हुए। यह देख विवस्वान बहुत प्रसन्न हुए। इसके अनन्तर वे कुरुक्षेत्र में गये और घोड़ी का रूप धारण करने वाली संज्ञा से उन्होंने अश्विनी-कुमार नामक दो पुत्र उत्पन्न किये। इसके बाद संज्ञा को लेकर वे अपने लोक को चले गये। उनके पुत्र मनु ने संसार का धर्म पूर्वक शासन किया। यम पितरों के राजा हुए। शनैश्चर ग्रह हो गये और यमी यमुना नामक नदी के रूप में प्रकट हुईं।'

अध्याय १०

इक्ष्वाकुवंश, इला स्त्री से पुरुष

वैशम्पायन जी बोले—'वैवस्वत मनु के इक्ष्वाकु, नाभाग, धृष्णु, शर्याति, नारिष्य, प्रांशु, नाभारिष्ट, वरुण, पृषध्र नामक नौ पुत्र हुए। इन पुत्रों की उत्पत्ति के पहले मनु ने पुत्र की कामना से मित्रावरुण को प्रसन्न करने के लिए यज्ञ किया। उस यज्ञ से सब तृप्त हुए और मित्रावरुण के अंश से इला नामक एक कन्या प्रकट हुई। मनु ने उस कन्या को अपने साथ ले जाना चाहा। पर इला ने मित्रावरुण से हाथ जोड़कर विनीत स्वर में पूछा कि मैं आपके अंश से उत्पन्न हुई हूं, आप मुझे क्या आज्ञा देते हैं। मित्रावरुण ने उसे मनु के पास जाने की आज्ञा दी। इला मनु के पास जाने लगी। इसी बीच में चन्द्रमा के पुत्र बुध ने उससे पुरुरवा नामक पुत्र उत्पन्न किया। फिर इला मनु के पास चली गई। कुछ समय बाद इला ने सुधुम्न नामक पुरुष का रूप धारण किया। सुधुम्न ने अपनी रानी में उत्कल, गय और विनताश्व नामक तीन पुत्रों को उत्पन्न किया। उत्कल ने उत्कल देश और गय ने गया को बसा कर वहाँ का राज्य किया। मनु के सूर्यलोक में चले जाने पर उनके इक्ष्वाकु

आदि नौ पुत्रों ने अपने पिता के राज्य को बाँट लिया। सुधुम्न को इस बँटवारे में भाग न दिया गया। वशिष्ठ जी की सम्मति लेकर उन्होंने प्रतिष्ठानपुर (प्रयाग के पास झूँसी) में अपना राज्य स्थापित किया और फिर उसे अपने पुत्र पुरुरवा को दे दिया। उत्कल के धृष्टक, अंबरीष और दण्ड नामक तीन पुत्र हुए। दण्ड ने दण्डकवन की स्थापना की। मनु के अन्य पुत्रों से अनेक क्षत्रिय वंश चले। नाभागारिष्ट के पुत्र और वंशज वैश्य हो गये। शर्याति के सुकन्या नामक पुत्री हुई, जिसने च्यवन ऋषि से विवाह किया। शर्याति के वंश में आगे चलकर कुशस्थली के राजा रेवत हुए जो रेवती नामक अपनी कन्या को लेकर ब्रह्मलोक में गये। वहाँ वे कुछ ही देर तक गँधर्वों का गाना सुनते रहे। किन्तु इधर पृथ्वी पर उतने ही काल में बहुत युग बीत गये। पृथ्वी पर लौट कर रेवत ने देखा कि उनकी राजधानी यादवों के हाथों में चली गई है। समय को पलटा हुआ देख रेवत अपनी कन्या रेवती का विवाह बलदेव जी के साथ कर तप करने चले गये। ब्रह्मलोक में वृद्धावस्था, भूख, प्यास, मृत्यु आदि नहीं सता सकतीं इसी कारण इतना समय बीतने पर भी रेवत या रेवती में कुछ परिवर्तन न हुए थे।

'आगे चल कर नाभागारिष्ट के वंश वाले वैश्यों में से

कुछ लोग ब्राह्मण हो गये। राजा पृषध्र ने अपने गुरु की गाय मार डाली थी इस कारण वह शूद्र हो गया। इक्ष्वाकु के विकुक्षि, विकुक्षि के शशाद, उनके काकुत्स्थ नामक पुत्र हुए। आडीबक नामक देवसुर-संग्राम में काकुत्स्थ ने इंद्र को बैल बना तथा उसपर सवार हो कर दानवों का संहार किया था। काकुत्स्थ के अनेना, उनके पृथु, उनके विष्टराश्व, उनके आर्द्र, उनके युवनाश्व, उनके श्राव, उनके श्रावस्त (श्रावस्ती पुरी बसाने वाला) उनके बृहदश्व उनके कुवलाश्व नामक पुत्र हुए। बृहदश्व ने अपने पुत्र कुवलाश्व को राज्य देकर वन जाने की तैयारी की। इसी अवसर पर उत्तंक ऋषि ने आकर कहा—'वन में तप करने से कहीं अधिक पुण्य का कार्य है प्रजा को पालना और दुष्टों का नाश करना। आप वन न जाकर यहीं रहिये और दुष्टों का दमन कर प्रजा की रक्षा कीजिये। इसी से आप को सभी शुभ कर्मों के फल प्राप्त हो जायेंगे। मरुधन्वा-देश में मेरे आश्रम के पास मधु राक्षस का पुत्र धुंधु राक्षस बालू के नीचे रहता है। जब वह सांस लेता है तब पृथ्वी काँपने लगती है और बालू के बादलों से सूर्य छिप जाता है। इससे प्रजा को बड़ा कष्ट होता है। आप उसे मार कर पुण्य के भागी बनिये।' बृहदश्व ने अपने पुत्र को उस राक्षस को मरने का भार सौंप कर वन

का रास्ता लिया। कुवलाश्व ने अपने सौ पुत्रों के साथ राक्षस पर चढ़ाई कर दी। उन्होंने उस स्थान को खोद कर समुद्र बना दिया। राक्षस ने क्रोधकर राजा के पुत्रों को भस्म कर डाला। केवल तीन पुत्र बच रहे। अन्त में घोर युद्ध कर राजा ने उसे नष्ट कर डाला। धुंधु के मारने से कुवलाश्व का नाम धुंधुमार पड़ा।

'कुवलाश्व के दृढ़ाश्व, उनके हर्यश्व, उनके निकुंभ, उनके संहताश्व हुए। उनके कुल में आगे चलकर तीनों लोकों को जीतनेवाले मान्धाता हुए। मान्धाता के पुरुकुत्स, उनके त्रसदस्यु, उनके सम्भूत, उनके सुधन्वा, उनके त्रिधन्वा, त्रयारुणा, फिर उनके सत्यव्रत का जन्म हुआ। सत्यव्रत दूसरों की स्त्रियों, कन्याओं आदि को हरणकर उनसे विहार करने लगा, इस कारण प्रजा के कल्याण के लिए उसके पिता राजा त्रयारुणा ने उसे दण्ड देकर देश से निकाल दिया। वह वन में जाकर चाण्डालों के साथ रहने लगा। उसका पिता भी राज्य छोड़कर तप करने चला गया। इसी बीच में उस देश में बारह बरस तक पानी न बरसा। घोर अकाल पड़ा। उस अकाल में विश्वामित्रजी तप करने चले गये थे। उनकी स्त्री अपने अन्य पुत्रों की रक्षा के लिए अपने मझले लड़के को बेचने के लिए नगर में गई। यह देख सत्यव्रत ने उन्हें समझाकर लौटाया।

बेचने के लिए मझले लड़के के गले में बंधन बांधा गया था, इस कारण उसका नाम गालव पड़ा। सत्यव्रत वनैले पशुओं के मांस से उन सब का पालन करने लगा।

'जब सत्यव्रत के पिता ने उसे राज्य से निकाला था तब उसे यह आशा थी कि वशिष्ठजी उसका पक्ष लेकर उसे गद्दी दिलायेंगे। किन्तु वशिष्ठजी चाहते थे कि वह अपने पापों का प्रायश्चित्त करके शुद्ध हो ले, तब वे उसे गद्दी पर बैठालें। इस बात को न जानने के कारण सत्यव्रत वन में रहकर वशिष्ठजी से वैर मानने लगा। एक बार जब उसे कहीं किसी पशु का मांस न मिला तो उसने वशिष्ठजी की गाय को मारकर उसके मांस को विश्वामित्र के कुटुम्बियों को खिला दिया। वशिष्ठजी ने उसे शाप दिया कि मेरी गाय मारकर तूने तीन शंकु (पाप) किये हैं, इस कारण तू त्रिशंकु नामक चाण्डाल हो जा। किन्तु इधर विश्वामित्रजी ने जब लौटकर यह देखा कि त्रिशंकु ने मेरे कुटुम्ब का पालन किया है तो उन्होंने उसे शुद्धकर गद्दी पर बैठाला और राजसूय यज्ञ करा कर उसे सदेह स्वर्ग को भेज दिया। त्रिशंकु के हरिश्चन्द्र और हरिश्चन्द्र के रोहित नामक पुत्र हुआ। रोहित ने रोहितपुर बसाया। रोहित के हरित, उनके चंचु, उनके विजय, उनके रुरुक नामक पुत्र हुआ। शक, यवन फिर कांबोज

आदि ने रुरुक के राज्य को नष्ट कर डाला। उसकी गर्भवती स्त्री की रक्षा और्व मुनि ने की। उससे सगर नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसकी सौतेली माताओं ने उसे गर्भ में मारने के लिए विष (गर) दिया था, पर वह मरा नहीं। सगर ने और्व मुनि से अग्नि-अस्त्र प्राप्तकर अपने पिता के शत्रुओं को नष्टकर डाला और समस्त पृथ्वी को जीत लिया। जीते हुए शक, तालजंघ आदि क्षत्रियों को सगर ने विकृतरूप कर दिया। फिर उन्होंने विधिपूर्वक सौ अश्वमेध यज्ञ किये। एक बार यज्ञ का घोड़ा खो गया। उसे खोजने के लिए सगर के साठ हजार पुत्रों ने पृथ्वी को खोद डाला। उसीसे सागर (समुद्र) की उत्पत्ति हुई। आगे जाकर सगर के साठ हजार पुत्र भगवान कपिलदेव की क्रोधाग्नि में पड़कर भस्म हो गये। बर्हकेतु, सुकेतु, धर्मरथ और पंचजन नामक चार पुत्र बचे। उन्हीं से सगर का वंश चला। पंचजन के अंशुमान, अंशुमान के दिलीप, उनके खट्वाँग और भगीरथ हुए। भगीरथ घोर तपकर गंगाजी को स्वर्ग से पृथ्वी पर लाये। भगीरथ के श्रुत, श्रुत के नाभाग, उनके अंबरीष, उनके सिन्धुद्वीप, उनके अयुताजित, उनके ऋतुपर्ण नामक पुत्र हुए। ऋतुपर्ण पांसों के खेल में बड़े प्रवीण थे, इस कारण राजा नल ने उनसे मित्रता की। ऋतुपर्ण के आतिपर्ण, उनके सुदास

(जिनसे इन्द्र ने मित्रता की), सुदास के सौदास, उनके कल्माषपाद (मित्रसह) कल्माषपाद के सर्वकर्मा, उनके अनुरण्य, उनके निघ्न, उनके अनमित्र और रघु हुए । अनमित्र के दुलिदुह, दुलिदुह के दिलीप, दिलीप के रघु, रघु के अज, अज के दशरथ और दशरथ के रामचन्द्रजी, रामचन्द्रजी के कुश, कुश के अतिथि, अतिथि के निषध, उनके नल, नल के नभ, नभ के पुंडरीक, उनके क्षेमधन्वा उनके देवानीक, उनके अहीनगु, उनके सुधन्वा, उनके नल, उनके उक्थ, उनके वज्रनाभ, उनके व्युषिताश्व, उनके पुष्प, उनके अर्थसिद्धि, उनके सुदर्शन, उनके अग्निवर्ण उनके शीघ्र, उनके मरु, उनके विश्रुतवत्, उनके बृहद्बल हुए । यही वैवस्वत मनु का वंशानुक्रम है ।'
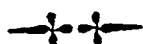
अध्याय १६-२४

पितरों के गण और लोक, कौरववंश, उमायुष, सनत्कुमारमार्कण्डेय संवाद

जन्मेजय ने श्राद्ध तथा पितरों के रहस्य को सुनना चाहा । तब वैशम्पायनजी बोले—'यही प्रश्न युधिष्ठिर ने भीष्म-पितामह से किया था । उन्होंने मार्कण्डेय का संवाद सुनाकर उनके भ्रम को दूर किया था । भीष्म बोले—'हे युधिष्ठिर ! एक बार मै विधिपूर्वक श्राद्ध करने

लगा। पिण्ड देते समय मेरे पिता का हाथ पृथ्वी में से प्रकट हुआ। अपने पिता के हाथ को ठीक से पहचान लेने पर भी मैंने विधि के अनुसार पिण्ड कुशों पर ही अर्पित किया। इस कर्म से पिता ने प्रसन्न होकर मुझे आशीर्वाद दिया और कहा कि जिस प्रकार धर्म की रक्षा करनेवाले को धर्म का चौथा अंश मिलता है, उसी तरह अधर्म की रक्षा करनेवाले को भी अधर्म का चौथा अंश प्राप्त होता है। पिता के अन्तर्धान हो जाने पर मैंने श्री मार्कंडेयजी से पितरों के सम्बन्ध में प्रश्न किये। तब मार्कण्डेयजी बोले—'पूर्व समय में मैंने घोर तप किया। तब दिव्य विमान में बैठकर सनत्कुमारजी ने मुझे दर्शन दिये। उनकी पूजा कर मैंने उनसे पितरों के विषय में प्रश्न किये। तब प्रसन्न हो सनत्कुमारजी बोले—'एक बार ब्रह्माजी ने अपनी पूजा कराने की कामना से देवगण की रचना की। किन्तु देवगण ने उनकी पूजा करना छोड़ दिया। तब कुपित होकर ब्रह्माजी ने देवगण को शाप दिया कि तुम संज्ञाहीन, ज्ञानरहित हो जाओ। शाप से डर कर देवगण ने ब्रह्माजी की बड़ी अनुनय-विनय,सेवा-प्रार्थना की। अन्त में ब्रह्माजी ने उन-पर दयाकर यह व्यवस्था कर दी कि पुत्रों से पूछ कर प्रायश्चित्त करने पर शाप से उनका छुटकारा हो जाय। देवगण ने वैसा ही किया। उन्हें फिर

ज्ञान प्राप्त हो गया। किन्तु पुत्रों ने देवगण को अपना पुत्र मानना प्रारम्भ किया। देवगण ने ब्रह्माजी से जाकर इस बात की शिकायत की। तब ब्रह्माजी ने व्यवस्था कर दी कि पुत्रों से देवगण ने ज्ञान प्राप्त किया है, इस कारण वे (देवगण) उनके (पुत्रों के) पुत्र माने जायँगे। इस प्रकार वे दोनों परस्पर एक दूसरे के पितर हुए। तभी से देवगण पितरों की पूजा करने लगे। श्राद्ध में पितरों को प्रसन्न करने से मनोवांछित फल प्राप्त होते हैं।'

'मार्कण्डेयजी ने पितरों के गणों की संख्या और उनके लोकों के विषय में जानना चाहा। तब सनत्कुमारजी बोले—'स्वर्ग में पितरों के सात गण हैं, तीन मूर्ति-रहित और चार मूर्ति वाले। इनमें से वैराज नामक पितर गण सनातन लोक में निवास करते हैं। इनकी मानसी कन्या मैना है, जिसका हिमालय के साथ विवाह हुआ। उसके क्रौंच नामक पुत्र और अपर्णा, एक-पर्णा और एक-पाटला नामक तीन कन्याएँ हुईं। उन तीनों ने घोर तप करना प्रारम्भ किया। एक-पर्णा केवल एक पत्ता खाती थी, एक-पाटला केवल पाटल के एक पुष्प का आहार करती थी और अपर्णा कुछ भी आहार नहीं करती थी। अन्त में माता ने अपर्णा को ऐसा तप करने से रोका। तभी से उनका नाम उमा पड़ा। उमा का विवाह शंकरजी से हुआ।

'सोमपद लोक में मरीचि के पुत्र अग्निष्वात्ता नामक पितरों का वास है। इनके अच्छोदा नामक मानसी कन्या हुई। उसी से अच्छोदा नामक नदी और अच्छोद नामक सर हुआ। इस कन्या ने अपने उत्पन्न करने वाले पितरों को नहीं देखा था, इस कारण उसने पति-प्राप्ति की इच्छा से आकाश-मार्ग में घूमते हुए अपने पितरों को ही मन में पति रूप में वरण किया। इस पाप के कारण उसे पितर-लोक से गिरना पड़ा। गिरते समय उसने पितरों से बड़े विनीत भाव से क्षमा के निमित्त प्रार्थना की। तब पितरों ने प्रसन्न होकर यह व्यवस्था करदी कि वह पृथ्वी पर कर्म-फल भोगकर फिर पितर लोक को प्राप्त हो। वही कन्या वसुराज के अंश से मत्स्य के पेट से जन्म लेकर मत्स्योदरी (सत्यवती) के नाम से विख्यात हुई और फिर धीवर के घर में पलकर उसने व्यासदेव को जन्म दिया।

'वैभ्राज लोक में पुलस्त्य के पुत्र बर्हिषद नामक पितर वास करते हैं। उनकी पीवरी नामक मानसी कन्या है जिससे शुकदेवजी जन्म लेंगे। ज्योतिर्भासिषु लोक में वशिष्ठ के पुत्र सुकाल नामक पितर वास करते हैं। गौ नामकी उनकी मानसी कन्या है। दिवि लोक में सुस्वधा नामक पितर हैं, जिनकी दशोदा नामकी मानसी कन्या है, जो ययाति की माता और नहुष की रानी है। हिरण्य

गर्भ के पुत्र सोमपा पितर स्वर्गलोक में वास करते हैं, जिनकी नर्मदा नामक मानसी कन्या है। मनु को श्राद्ध देव कहते हैं। पितरों के लिए चाँदी के पात्र होने चाहिए और पितृ-कर्म 'स्वधा' शब्द से प्रारम्भ करना चाहिए। जो पितरों को प्रसन्न करता है उनकी सब कामनाएँ पूर्ण होती हैं। मार्कण्डेयजी बोले--इसके अनन्तर योग-सिद्धि प्राप्त करने का उपदेश देकर सनत्कुमारजी अन्तर्धान हो गये। मैंने अट्ठारह वर्ष तक घोर तप तथा साधना कर सिद्धि प्राप्त की। सनत्कुमार जी की कृपा से मैंने कुरुक्षेत्र में कौशिक के पुत्रों को देखा।'

भीष्मजी बोले--'हे युधिष्ठर! मार्कण्डेयजी द्वारा वर्णन की हुई कथा मैं तुमको सुनाता हूँ। पौरव-वंश इस प्रकार है:--प्रथम बृहच्छत्र राजा हुआ। उसके सुहोत्र, सुहोत्र के हस्ती (जिसने हस्तिनापुर बसाया) उसके अजमीढ द्वीमीढ, पुर, मीढ, हुए। अजमीढ के बृहदिषु, उसके बृहद्धनु, उसके बृहद्धर्मा, उसके सत्यजित, उसके विश्वजित, उसके सेनजित, उसके रुचिर, उसके पृथुषेन, उसके नीप, उसके समर, उसके पृथु, उसके विभ्राज, उसके अणुह (जिसको शुकदेवजी की कृत्वी नामक कन्या दी गई) अणुह के ब्रह्मदत्त, ब्रह्मदत्त के सर्वसेन और वृष्वक्सेन, [illegible] विष्वक्सेन के दण्डसेन, उसके भल्लाट, उसके

दुर्बुद्धि नामक पुत्र हुआ। इसीसे नीपवंश का अन्त हुआ। उग्रायुध ने नीपवंश का अन्त किया था और यही उग्रायुध मेरे हाथ से महाभारत के पहले युद्ध में मारा गया था।

'अजमीढ के यवीनर उसके धृतमान, उसके सत्यधृत, उसके दृढ़नेम, उसके सुधर्मा, उसके सार्वभौम, उसके रुक्मरथ, उसके सुपार्श्व, उसके सुमति, उसके सन्नति, उसके कृतु, (इसने सामसंहिता के चौबीस विभाग किए) कृतु के उग्रायुध हुआ जिसने नीपवंश का नाश किया। आस-पास के राजाओं को मारकर उग्रायुध चक्रवर्त्ती राजा हो गया। अभिमान के कारण उसने मेरे (भीष्म पितामह के) पिता शान्तनु के मरने पर मुझे सन्देश भेजा कि तुम अपनी मात, रूपवती योजन-गन्धा को मुझे (उग्रायुध को) अपनी रानी बनाने के लिए दे दो नहीं तो मैं तुम्हारा नाशकर डालूँगा। उसके इस नीचतापूर्ण प्रस्ताव को कुछ समय तक टालता रहा। अन्त में मैंने अपने पिता के क्रिया-कर्म से निवृत होकर उग्रायुध से युद्ध किया और उसे मार डाला। उग्रायुध का पुत्र क्षेम हुआ। उसके सुवीर, उसके नृपंजय, उसके बहुरत हुआ। उग्रायुध के मारे जाने पर नीपवंश के राजा पृषत ने पाँचालदेश में अपने पूर्व पुरुषों का राज्य फिर से प्राप्त कर लिया। पृषत के पुत्र द्रुपद हुए।'

भीष्म फिर बोले—'राजा ब्रह्मदत्त के महल में पूजनी नामक एक चिड़िया रहती थी। वह नित्य वन, उपवन, पहाड़, नदी, सर आदि के सुन्दर दृश्यों तथा नाना स्थानों में घटने वाली घटनाओं को संध्या समय आकर राज्य को सुनाती थी। कुछ समय बाद राजा के और उस चिडिया के एक-एक पुत्र हुआ। चिड़िया राजा के पुत्र को भी अपने ही पुत्र के समान प्यार करती और दोनों को नित्य संध्या समय एक-एक अमृत फल लाकर देती। कुछ समय बाद राजा के लड़के ने खेलते-खेलते चिड़िये के बच्चे की गर्दन मरोड़ दी। वह टें बोल गया। यह देख राजा बहुत दुःखी हुआ। कुछ समय बाद पूजनी लौटी। अपने बच्चे को मरा हुआ देख उसे बड़ा शोक हुआ। विलाप करते-करते क्रोध में आकर उसने राजा के लड़के की आँखें फोड़ डालीं। फिर उसने अपने कर्म को समझकर राज-महल छोड़ देना चाहा। राजा ने उसे बहुत तरह से समझाया और वहीं रहने को कहा। पर पूजनी ने कहा—'मैं तुम्हारे पुत्र-प्रेम को जानती हूँ। अब मेरा यहाँ रहना उचित नहीं है। जो अपकार करने वाले का, राज-पुरुष का, शत्रु का विश्वास करता है वह बहुत दिन नहीं जी सकता। कुदेश, कुभार्या, कुमित्र को छोड़ देने में ही कल्याण है। यह कह वह चिड़िया वहाँ से चली गई।'

मार्कण्डेय जी बोले—'श्राद्ध से उत्तम फल और उत्तम लोक प्राप्त होते हैं। सनत्कुमार जी ने जिन तपस्वियों का वृत्तान्त सुनाया था उनका दर्शन मैंने कुरुक्षेत्र में किया। पूर्व जन्म में वे सात भाई अपने गुरु की गाय को चराने के लिए वन में ले गये थे। राह में उन्हें भूख लगी। उन्होंने उस गाय को मारकर खाना चाहा। तब एक भाई ने कहा कि यदि तुम गाय को मारना ही चाहते हो तो इसे पितरों के निमित्त मारो। सब ने उस सलाह को मानकर गाय को पितरों के उद्देश्य से मारा और विधि पूर्वक उसके मांस को पितरों को अर्पण कर अपना पेट भरा। संध्या समय सातों ने आकर गुरु से कह दिया कि वन में सिंह गाय को खा गया। पर गुरु उनके कर्म को जान गये। उन्होंने शाप दिया कि तुम्हें अनेक योनियों में जन्म लेना होगा। पाप कर्म के कारण उन्हें व्याध के घर जन्म लेना पड़ा। पूर्व जन्म की स्मृति रहने के कारण उन्होंने हिंसा-कर्म छोड़ तपकर प्राण त्यागे। दूसरे जन्म में वे मृग हुए। निराहार रहकर उन्होंने मृग-योनि को भी त्यागा। तब चकवा की योनि में और उसके बाद हंसों के रूप में उन्होंने क्रम से जन्म लिया। हंस की योनि में उनमें से एक ने एक राजा को देख कर राजा होना चाहा और दो ने राज-मंत्री। इस कारण अपने पूर्व सुकर्मों

के प्रभाव से एक ने राजा ब्रह्मदत्त के रूप में जन्म लिया और दो ने उनके मंत्री के रूप में। शेष चार ने निष्ठावान ब्राह्मण के घर में जन्म लिया। कुछ दिन माता-पिता की सेवा करने के अनन्तर वे चारो भाई वन में तप करने के लिए जाने लगे। उनके पिता ने उनसे अपने निर्वाह के लिये धन चाहा। चारों ने कहा कि हम कुछ श्लोक लिखे देते हैं, तुम इन्हें राजा ब्रह्मदत्त को जाकर सुनाना, वे तुम्हें बहुत अधिक धन दे देंगे। इधर राजा ब्रह्मदत्त अपने मंत्रियों के साथ सुख पूर्वक राज्य करते थे। एक बार वे चींटी-चींटे की बातें सुनकर बहुत हँसे। उनकी रानी ने समझा कि राजा मेरा परिहास करके हँसे हैं। उसने उदास होकर खाना-पीना छोड़ दिया। तब राजा ने उसे समझाते हुए कहा कि मैं तो चींटी की बातें सुन-कर हँसा था। रानी जिद करने लगी कि मुझे भी उनकी बातें सुनने का उपाय बतला दो। राजा उसका उपाय सोचने लगा। इसी बीच में ब्राह्मण-पुत्रों के कहने से उनका पिता ब्रह्मदत्त के पास आया और उसे ऐसे श्लोक सुनाये जिसमें सातों के पूर्व जन्मों का पूरा विवरण था। राजा तथा मंत्रियों को अपने पूर्व जन्मों का स्मरण न रह गया था। श्लोक सुनकर उन्हें सब बातें याद पड़ गईं। उन्हें विराग हो गया। ब्रह्मदत्त ने ब्राह्मण को बहुत-सा

धन देकर विदा। फिर अपने पुत्र विष्वक्सेन को राज्य देकर अपने मंत्रियों सहित वन में जाकर वेत पयोग द्वारा उत्तम गति को प्राप्त हुए। गाय के मारने से उन्हें अनेक योनियां में भ्रमण करना पड़ा, किन्तु पितरों को उसके मांस को अर्पण करने के कारण उन्हें अपने पूर्वजन्म का स्मरण रहा और वे शुभ कर्मों द्वारा अन्त में उत्तम गति को प्राप्त हुए। पितरों को प्रसन्न करने से सभी को उत्तम गति प्राप्त होती है।

अध्याय २५-३७

चन्द्रवंश, पुरुरवा-उर्वशी, यदुवंश, जह्नु-गंगा, परशुराम विश्वामित्र-वंश, रजि-इंद्र, धन्वन्तरि, काशी को शाप, ययाति-युवावस्था

वैशम्पायन जी बोले—'पूर्व समय में ब्रह्माजी ने अत्रि महर्षि को उत्पन्न किया। अत्रि ने घोर तप करने के अनन्तर चन्द्रमा को उत्पन्न किया। चन्द्रमा से औषधियों तथा अन्न की पुष्टि और वृद्धि हुई; जिससे सभी का जीवन निर्वाह होने लगा। चन्द्रमा ने एक बहुत बड़ा यज्ञ कर सारी पृथ्वी दान कर दी। इससे उनका यश, प्रभाव और वैभव बहुत बढ़ गया। वे सबके राजा हो गये। दक्ष ने अश्विनी आदि अपनी सत्ताइस कन्याओं से उनका विवाह कर दिया। कुछ समय बाद अपने अधिकार के कारण चन्द्रमा को घंमड हो गया। उन्होंने देव-गुरु वृहस्पति की

स्त्री तारा को हर लिया, और देवगण के बहुत समझाने पर भी उसे नहीं लौटाया। तब बृहस्पति जी ने युद्ध ठान दिया। देवगण नें बृहस्पति का तथा दैत्यों एवं शुक्राचार्य ने चन्द्रमा का पक्ष लिया। तारकामय नामक घोर युद्ध हुआ, जिसमें बहुत से देवता तथा दानव नष्ट हो गये। यह संहार देख ब्रह्माजी ने स्वयं आकर तारा को चन्द्रमा से लेकर बृहस्पति को दे दिया। चन्द्रमा के द्वारा तारा को गर्भ रहगया था, जिससे बुध नामक तेजस्वी बालक उत्पन्न हुआ। उसने इला में पुरुरवा को उत्पन्न किया। चन्द्रमा को क्षय रोग हो गया था जिसे अत्रि महर्षि ने दूर कर दिया।'

'चन्द्रमा के बुध और बुध के परमप्रतापी, अत्यन्त स्वरूपवान पुरुरवा ने जन्म लिया। उर्वशी नामक अप्सरा को ब्रह्माजी ने शाप दिया कि तू पृथ्वी पर जाकर मनुष्य के पास रह। उसी शाप को पूरा करने के लिए उर्वशी राजा पुरुरवा के पास रहने लगी। उसनें राजा से प्रतिज्ञा करा ली थी कि जब तक तुम मेरे मेढ़ों की रक्षा करते रहोगे, मुझे नित ताजा घृत दोगे और सहवास के अतिरिक्त कभी नंगे न देख पड़ोगे तब तक मैं तुम्हारे पास रहूँगी। उर्वशी उनसठ वर्ष तक राजा के पास रह कर विहार करती रही। अन्त में उस की मुक्ति का समय आया। गन्धर्वों

ने रात के समय उर्वशी के दोनों मेढ़ों को हर लिया। उर्वशी नें रक्षा के लिए राजा से कहा। हड़बड़ा कर राजा मेढ़ों की रक्षा के लिए दौड़ा। इसी समय गन्धर्वों ने एकाएक बिजली का प्रकाश कर दिया। उर्वशी नें राजा को बिना वस्त्र के देख लिया। प्रतिज्ञा-भंग होते ही वह राजा को छोड़ कर चली गई। मेढ़ों को लेकर राजा महल में वापस आया। वहाँ उर्वशी न देख पड़ी। राजा व्याकुल हो गया। राज-पाट छोड़ कर वह पगालों की तरह उर्वशी को खोजता हुआ पृथ्वी पर घूमने लगा। अन्त में एक दिन कुरुक्षेत्र में उसकी भेंट उर्वशी से हुई। वह विलाप कर उर्वशी को अपनें साथ चलनें के लिए मनानें लगा। उर्वशी नें कहा कि मेरे पेट में तुम्हारा बालक है ; एक वर्ष बाद में बालक को लेकर तुम्हारे पास आऊँगी और एक रात तुम्हारे पास रहूँगी। राजा शान्त होकर अपने नगर को चला गया। प्रतिज्ञा के अनुसार उर्वशी राजा के पास गई। किन्तु राजा को सन्तोष न हुआ। तब उर्वशी के कहनें से राजा ने गन्धर्वों को प्रसन्न कर यज्ञ किया और उर्वशी के साथ गन्धर्व-लोक को गया। पहले अग्नि का एक ही प्रकार था, पुरुरवा ने तीन अग्नि की कल्पना की। प्रयाग के पास गंगा के तट पर पुरुरवा की राजधानी थी। उर्वशी से पुरुरवा को आयु, अमावस,

विश्वायु, श्रुतायु, वनायु, दृढ़ायु नामक सात पुत्र हुए। असावसु के भीम और नग्नजित, भीम के कांचन-प्रभ, उसके सुहोत्र, उसके जन्हु हुए। जन्हु ने एक यज्ञ किया। उसी समय गंगाजी उन्हें अपना पति बनाने के लिए उनके पास गईं। किन्तु राजा ने गंगा जी को स्वीकार न किया। तब गंगाजी ने राजा के यज्ञ के स्थान को अपने जल से डुबो दिया और सब सामग्री को बहा दिया। यह देख राजा ने गंगा के जल को पान कर सुखा डाला। बाद में महर्षियों के कहने से राजा ने गंगा की धारा को पहले ही की तरह जल से परिपूर्ण कर दिया। तभी से गंगा जी जन्हु की पुत्री मानी जाने लगीं। गंगा ने अपने आधे भाग से राजा युवनाश्व के यहाँ कावेरी नाम से जन्म लिया था। युवनाश्व की इसी कावेरी नामक कन्या से जन्हु ने विवाह किया। जन्हु के सुनह, उसके अजक, उसके बलाकाश्व, उसके कुश, उसके कुशिक, कुशनाभ, कुशांब और मूर्तिमान नामक चार पुत्र हुए। कुशिक के तप से प्रसन्न होकर इन्द्र उनके गाधि नामक पुत्र के रूप प्रकट हुए। गाधि की सत्यवती नामक कन्या का विवाह ऋचीक ऋषि से हुआ। ऋचीक ने पुत्र-प्राप्ति के लिए अपनी स्त्री को और उसकी माता को एक-एक चरु दिया। सत्यवती की माता ने अपना चरु अपनी

कन्या को खिला दिया और उसका चरु स्वयं खा लिया। जब ऋचीक को इस बात का पता चला तो उन्होंने सत्यवती से कहा कि चरु के बदल जाने से तेरे घोर-कर्मा पुत्र होगा। सत्यवती बहुत डरी। तब उसके प्रार्थना करने पर ऋषि ने यह व्यवस्था कर दी कि पुत्र तो सात्विक हो किन्तु पौत्र घोर-कर्मा हो। सत्यवती के जमदग्नि ने जन्म लिया और उसकी माता से विश्वामित्र जी प्रकट हुए। सत्यवती बाद में कौशिकी नदी हो गई। जमदग्नि ने इक्ष्वाकुवंश के राजा रेणु की रेणुका नामक कन्या से विवाह किया, जिससे परम प्रचण्ड परशुराम जी प्रकट हुए। विश्वामित्र के देवश्रवा, कति (जिनसे कात्यायन वंश चला) हिरण्याक्ष, रेणुमान, सांकृति, गालव, मुद्गल, मधुच्छन्द, जय, देवल, अष्टक, अच्छप, हारित आदि वंशवर्धक पुत्र हुए। शुनःशेफ भृगुवंश में उत्पन्न होकर भी विश्वामित्र जी के पुत्र हो गये। इनका नाम देवरात पड़ा।'

'आयु के नहुष, वृद्धशर्मा, रंभ, रजि, अनेना नामक पाँच पुत्र हुए। इनमें से राजा रजि के पांच सौ महा प्रतापी पुत्र हुए। उसी काल में देवों और दानवों में घोर संग्राम हुआ। ब्रह्माजी ने कहा था कि रजि जिसका साथ देंगे वही जीतेगा। देव और दानव दोनों सहायता के

लिए रजि के पास गए। रजि ने देवगण से कहा कि यदि तुम मुझे इन्द्र बनाओ तो मैं तुम्हारी सहायता करूँ। देवगण ने उन्हें इन्द्र बनाना स्वीकार कर लिया। बाद में दानव सहायता माँगने के लिए पहुँचे। रजि ने उनसे भी वही शर्त चाही। दानव यह कहकर लौट गये कि हमारे इन्द्र तो प्रह्लाद हैं, दूसरा कोई हमारा इन्द्र नहीं हो सकता। रजि ने देवगण का साथ देकर दानवों को परास्त कर दिया। शर्त के मुताबिक वे इन्द्र हुए। उनके ५०० पुत्रों ने इन्द्र के सभी अधिकार छीन लिए। इन्द्रने बृहस्पतिजी से सहायता चाही। बृहस्पतिजी ने ऐसे शास्त्र रचकर रजि के पुत्रों को पढ़ाये कि उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई और अन्त में वे स्वर्ग से च्युत होकर नष्ट हो गये। इन्द्र ने फिर अपना प्रभुत्व पाया।

'रंभ का वंश नहीं चला। अनेना के प्रतिक्षत्र, उनके सृंजय, उनके जय, जय के विजय, उनके कृति, उनके हर्यश्वत, उनके सहदेव, उनके नदीन, उनके जयत्सेन, उनके संकृति, क्षत्रधर्मा ने जन्म लिया। क्षत्रवृद्ध के वंश में धन्वन्तरि ने जन्म लिया और लोक-कल्याण के लिए वैद्यक के काय-चिकित्सा, बाल-चिकित्सा, भूत-चिकित्सा, शिरोनेत्र-चिकित्सा, शल्य, दंष्ट्रा चिकित्सा (विषनाश) जरा (वृद्धावस्था दूर करने के उपाय) वृष (वाजी-करण) नामक आठ

विभाग किये । धन्वन्तरि के वंश में दिवोदास हुए।

'शिवजी पार्वती सहित हिमालय प्रदेश में वास करते थे। पार्वती की माता मैना शिवजी की निन्दा किया करती थीं। इससे उदास होकर पार्वती ने शिवजी से किसी दूसरे स्थान पर चलने के लिए कहा। तब शिवजी ने अपने पार्षद निकुम्भ से कहा कि काशी को खाली करा लो। निकुंभ ने स्वप्न में काशी के एक मनुष्य को आज्ञा दी कि तू मेरी मूर्ति स्थापित कर उसकी पूजा कर, मैं तेरी कामनाएँ पूर्ण करूँगा। उसने निकुंभ की मूर्ति की स्थापना की। काशी वासियों को इस मूर्ति की पूजा से मन चाहे फल मिलने लगे। राजा ने भी पुत्र की कामना से अपनी रानी को उस मूर्ति की पूजा करने के लिए भेजा। किन्तु बहुत पूजा-सेवा करने पर भी जब रानी के पुत्र न हुआ तो राजा ने उस स्थान को नष्ट कर दिया। यह देख निकुंभ ने शाप दिया कि काशी एक हजार वर्ष तक शून्य रहेगी। शाप से अनायास ही पुरी शून्य हो गई। तब शिवजी ने वहाँ वास करना प्रारंभ किया। किन्तु उस स्थान पर पार्वतीजी का मन न लगा। उन्होंने शिवजी से किसी दूसरे स्थान पर चलने को कहा। पर शिवजी काशी छोड़कर अन्यत्र जाने के लिए राजी न हुए। काशी के शून्य होने पर राजा दिवोदास ने गोमती नदी के तट पर दूसरी पुरी

बसाई। दिवोदास के प्रतर्दन, उसके वत्स, उसके अलर्क ने जन्म लिया। अलर्क ने लोपामुद्रा के प्रताप से क्षेमक राक्षस को मार कर फिर काशी पुरी को बसाया और दीर्घायु, अक्षय-यौवन का उपभोग किया। अलर्क के सन्तति, उसके सुनीथ, उसके केतुमान, उसके सुकेतु, उसके धर्मकेतु, उसके सत्यकेतु, उसके विभु, उसके आनर्त, उसके सुकुमार, उसके धृष्टकेतु, उसके वेणुहोत्र, उसके भर्ग ने जन्म लिया। वत्स के वत्सभूमि ने और भार्गव के भृगु-भूमि ने जन्म लिया। यह अंगिरा के पुत्र भार्गव के वंश का वर्णन है।'

'नहुष के यति, ययाति, संयाति आयाति, पांचिक, सुयाति नामक छः पुत्र हुए। ययाति ने अपने भाइयों को जीत कर साम्राज्य प्राप्त किया और शुक्राचार्य की कन्या देवयानी और राक्षसराज वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा से विवाह किया। देवयानी से यदु और तुर्वसु तथा शर्मिष्ठा से द्रुह्यु, अणु और पुरु नामक पुत्र उत्पन्न हुए। इंद्र ने प्रसन्न होकर ययाति को एक दिव्य रथ दिया, जिस पर बैठकर उन्होंने पृथ्वी के राजाओं को तथा देव, दानव आदि को जीत कर एक-छत्र राज्य स्थापित किया। यह रथ बराबर इनके वंश वालों के पास रहा। अन्त में कौरव वंशीय राजा जनमेजय के समय में गर्ग ऋषि के

पुत्रने उस रथ को नष्ट कर डाला। राजा ने गर्ग-पुत्र को मार डला। इससे राजा को ऐसी ब्रह्म-हत्या लगी कि उसे राज्य से अलग होकर अपने जीवन निर्वाह के लिए भीख माँगनी पड़ी। किन्तु उसे भीख न मिली। तब हार कर उसने शौनक की शरण ली। शौनक ने अश्वमेध यज्ञ करा कर उसे ब्रह्महत्या से मुक्त कर दिया। उसी रथ को चेदि राज वसुने इंद्रसे प्राप्त किया। अन्त में उसी रथ को जरा-संध से भीम ने प्राप्त किया और उसे श्री कृष्णजी को समर्पित कर दिया।'

'ययाति को असमय वृद्धावस्था ने आघेरा। तब उन्होने अपने बड़े पुत्र मृदु से उसकी युवावस्था माँगी। पर वह पिता की वृद्धावस्था के बदले में अपनी युवावस्था देने को राजी न हुए। राजा ने क्रम से अपने अन्य सभी पुत्रों से वही प्रस्ताव किया, किन्तु छोटे पुत्र पुरु को छोड़ कर और किसी ने उसे स्वीकार न किया। अन्त में ययाति ने पुरु को अपनी वृद्धावस्था देकर उसकी युवावस्था लेली और बहुत दिनों तक वे नाना प्रकार के सुख भोगते रहे, विहार करते रहे। किन्तु उन्हें तृप्ति न हुई, संतोष न मिला। अन्त में उन्होने पुरु को उसकी युवावस्था फेर दी और कहा 'काम की शान्ति उपभोग करने से नहीं होती, जैसे घृत से अग्नि बढ़ती ही है, शान्त नहीं होती, इसी प्रकार

पृथ्वी भर की सुन्दरी स्त्रियाँ, और उत्तम वस्तुएँ भी एक मनुष्य तक को नहीं संतुष्ट कर सकतीं। उसे अधिक की तृष्णा होती है। मनुष्य के वृद्ध होने पर उसके अंग, उपांग वृद्ध हो जाते हैं, किन्तु उसकी तृष्णा वृद्ध नही होती, धन की आशा, जीने की कांक्षा और भोग की तृष्णा बढ़ती ही जाती है। तृष्णा के त्याग में ही असली सुख है। पृथ्वी और स्वर्ग का सुख तृष्णा-त्याग के सुख के सोलहवें हिस्से के बराबर भी नहीं है। यह कह उन्होंने वन में जाकर घोर तप किया और तृष्णा को छोड़ कर अक्षय लोक प्राप्त किये। उन्होंने पुरु को छोड़ कर अपने अन्य चार पुत्रों को शाप दिया था कि तुम्हें राज्य न मिलेगा; इस कारण पुरु राज्य के अधिकारी हुए। ययाति के पाँचों पुत्रों के वंशों से पृथ्वी भर गई।'

'पुरु के जनमेजय, उनके प्रचीन्वान, उनके प्रवीर, उनके मनस्यु, उनके अभयपद, उनके सुधन्वा, उनके बहुगव, उनके शम्यति, उनके रहस्याति, उनके रौद्राश्व नामके पुत्र हुए। रौद्राश्व के दस कन्याए हुई जिनसे अत्रि वंश चला। आगे चलकर पुरु के वंश में महा प्रतापी, योग-सिद्ध राजा कलि (बलि) हुआ जिसे ब्रह्माजी ने कई वर दिये और जिसकी रानी सुदेष्णा में दीर्घतमा ऋषि ने अंग, वंग, सुह्म, कलिंग, पुंड्र नामक पांच पुत्र उत्पन्न

किये। इन्हीं पाँचों ने आपने-अपने नाम से पाँच देश बसाये और वंश चलाये। अंग के वंश में दशरथ लोमपाद हुआ जिसके शान्ता नामक कन्या हुई। शान्ता का विवाह ऋष्यशृंग के साथ किया गया। आगे चलकर इसी वंश में अधिरथ नामक सूत-पुत्र हुआ जिसने कुन्ती (पृथा) के पुत्र कर्ण को पाला था। कर्ण के वृषसेन, और उसके वृष ने जन्म लिया।'

'रौद्राश्व के महा प्रतापी ऋचेयु, ऋचेयु के मतिनार नामक पुत्र हुए। इसी वंश में क्षेमक राक्षस को मारने वाला प्रतापी राजा दिवोदास हुआ। आगे चलकर इसी वंश में जह्नु हुए और बाद में कुशिक (गाधि) हुए। इसी वंश में मुद्गल आदि पाँच प्रतापी राजा हुए जिनसे पांचाल देश विख्यात हुआ। इसी वंश में अहल्या नामक कन्या हुई जिस में गौतम ने शतानन्द को उत्पन्न किया। शतानन्द के पुत्र सत्यधृत से कृपाचार्य और कृपी का जन्म हुआ। दिवोदास के वंश में अनेक प्रतापी राजा हुए। अजमीढ़ के वंश में पृषत हुए। पृषेत के द्रुपद, द्रुपद के धृष्टद्युम्न, उनके धृतकेतु हुए। अजमीढ़ की दूसरी रानी से ऋक्ष, ऋक्ष से संवरण, उनसे कुरु हुए, जिन्होंने कुरुक्षेत्र में राज्य किया। इन्हीं से कौरव वंश चला। इसी वंश की शाखा में मगध राज ऊर्ज हुए जिनके महाबली जरासंध ने जन्म लिए।

जरासंध के सहदेव, उनके उदायु, उनके श्रुतधर्मा नामक पुत्र हुआ। एक दूसरी शाखा से शांतनु, देवापि और वाह्लीक नामक तीन भाई हुए। शांतनु के वंश में धृतराष्ट्र और पाण्डु हुए जिनसे दुर्योधन आदि कौरव और युधिष्ठिर आदि पाण्डव हुए। वाह्लीक के सोमदत्त, उनके भूरि, भूरिश्रवा, शल नामक तीन पुत्र हुए।

'तुर्वसु के वह्नि, उनके गोभानु, उनके त्रैसानु, उनके करंधम, उनके मरुत्त नामक पुत्र हुए। मरुत्त के पुत्र नहीं हुआ। उन्होंने अपनी कन्या सम्मता यज्ञ के अवसर पर महात्मा संवर्त को दे दी। सम्मता के दुष्यन्त पुत्र हुआ। तुर्वसु का वंश पौरव वंश में मिल गया। इसी वंश में आगे चल कर पॉड्य, केलर, कोल, चोल, नामक चार भाई हुए जिन्होंने अपने-अपने नाम से विभिन्न देश बसाये। इसी वंश में गांधार हुए जिनके नाम से गांधार देश विख्यात हुआ।'

यदु के सहस्रद, उनके हैहय, उनके धर्मनेत्र, उनके कार्त, उनके सहंजन, उनके महिषमान नामक पुत्र हुए। महिषमान ने माहिषमती नामक पुरी बसाई। महिषमान के भद्रश्रेन्य नामक पुत्र हुए जो काशी के राजा हुए। इसी वंश में आगे चल कर सहस्रार्जुन नामक महा प्रतापी पुत्र हुए जिन्होंने दत्तात्रेयजी की कृपा से हजार हाथ प्राप्तकर सातों दीपों को जीता और अनेक बड़े-बड़े यज्ञ

किए। अन्त में ऋषि के शाप के कारण परशुरामजी ने युद्ध में इनकी हजार भुजाओं को काट डाला। इसी कुल में आगे चल कर तालजंघ हुए। आगे चल कर इसी वंश के वृषण से वृष्णी, मधु से माधव और यदु से यादव वंश चले और शूरसेन से शूरसेन नामक देश विख्यात हुआ। दूसरी शाखा से अन्धक हुए जिनसे अन्धक वंश चला। इसी वंश में श्वफल्क हुए जिनके साथ काशी के राजा ने अपनी पुत्री गान्दिनी का विवाह कर दिया, क्योंकि श्वफल्क के जाने से ही काशी में ठीक बारह वर्ष बाद जल की वर्षा हुई थी। श्वफल्क के अक्रूर हुए। यदुवंश की एक शाखा में देवमिढुष हुए, जिनके शूर, शूर के वसुदेव देवभाग, देवश्रवा, अनाधृष्ट, कनवक, वत्सवान, गृंजिम, श्याम, शमीक, गंडूष नामक नव पुत्र और पृथुकीर्ति, पृथा, श्रुतदेवा, श्रुतश्रवा, राजाधिदेवी नामक पाँच कन्याएँ हुईं। पृथा को कुन्तिभोज राजने शूरसेन से लेकर अपनी कन्या बनाया, तभी से उसका नाम कुन्ती पड़ा। श्रुतश्रवा ने शिशुपाल को और पृथुकीर्ति ने करुषराज दंतवक्र को जन्म दिया। वसुदेव के भाई देवभाग के उद्धव ने जन्म लिया। श्रुतदेवा का पुत्र एकलव्य हुआ जो निषादों में रहने के कारण भील माना गया।

वसुदेव जी के पौरवी, रोहिणी, इन्दिरा, वरा, वैषाखी,

भद्रा, सुनाम्नी, सरदेवा, शान्तिदेवा, देवरक्षिता, वृकदेवी, उपदेवी, देवकी आदि चौदह विवाहिता एवं सुतनु, वडवा नामक दो भोग्य पत्नियाँ थीं। रोहिणी ने बलराम आदि आठ पुत्रों और चित्रा तथा सुभद्रा नामक दो कन्याओं को जन्म दिया। देवकी से श्रीकृष्ण जी प्रकट हुए। यदुवंशियों के पुरोहित ने गोपाली नामक अप्सरा से कालयवन नामक पुत्र उत्पन्न किया जो यवनों के बीच में रहने के कारण यवन माना गया।'

इसी वंश के क्रोष्टु नामक राजा से चेदि वंश चला। दूसरी शाखा में आहुक हुए जिनके देवक और उग्रसेन नाम के दो पुत्र हुए। देवक के देववान आदि चार पुत्र और देवकी, शान्ति देवा, सुदेवा, देवरक्षिता, वृकदेवी, उपदेवी और सुनाम्नी, ये सात कन्याएँ हुईं जिनका विवाह वसुदेवजी के साथ हुआ। उग्रसेन के कंस आदि नव पुत्र और कंसा आदि पाँच कन्याएँ हुईं।

अध्याय २८-३९

स्यमंतक मणि; श्री कृष्णजी को कलंक

वैशम्पायनजी बोले—'अंधक-वंश में भजमान, विदूरथ असमोजा आदि अनेक महाप्रतापी राजा हुए। क्रोष्टु के वंश में आगे चल कर निम्न हुए, जिन के प्रसेन और सत्राजित

नाम के दो पुत्र हुए। द्वारकापुरी में बास करते समय सत्राजित ने सूर्य की आराधना कर उनसे स्यमंतक नामक परम प्रकाशवान मणि प्राप्त की। उसे अपने गले में पहन कर जब वे पुरी में आये तो मणि के तेज से नगर वासियों को भ्रम हो गया कि सूर्य भगवान पृथ्वी पर उतर आये हैं। वह मणि नित्य बहुत-सा सोना देती थी और जहाँ रहती थी वहाँ आधि-व्याधि नहीं आनेपाती थी। उसके इन गुणों के कारण श्री कृष्णजी ने सत्राजित से उस मणि को माँगा। पर सत्राजित उसे देने को राजी न हुए। एक दिन सत्राजित के भाई प्रसेन उस मणि को गले में बाँधकर वन में शिकार खेलने गये। दैवयोग से एक सिंह ने उन्हें मारडाला और मणि लेली। बाद में ऋक्षराज जाम्बवान ने उस सिंह को मारकर मणि अपनी कन्या को देदी। प्रसेन के न लौटने पर यह चर्चा फैल गई कि श्री कृष्णजी नें उसे मार कर मणि लेली है। इस कलंक को दूर करने के विचार से श्री कृष्णजी अनेक यादवों को लेकर वन में प्रसेन को खोजने निकले। पाँवों के चिह्नों को पहचानने वालों ने पता लगाकर प्रसेन और उसके घोड़े की लाश को खोज निकाला। फिर मरे हुए सिंह का पता लगाया। बाद में जाम्बवान की गुफा की खोज की गई। सबको विश्वास हो गया कि प्रसेन को सिंह ने और सिंह को जाम्बवान ने

मारा है। सब के मना करने पर भी श्री कृष्णजी जाम्बवान की गुफा के अन्दर गये। वहाँ उनसे ऋक्षराज ने इक्कीस दिन तक घोर युद्ध किया। अन्त में हार कर जाम्बवान ने अपनी जाम्बवती कन्या का विवाह श्रीकृष्णजी से कर दिया और मणि दहेज में देदी। श्रीकृष्णजी ने उस मणि को लाकर सब के सामने सत्राजित को लौटा दीया। तब सत्राजित ने लज्जा के कारण सत्यभामा आदि अपनी तीन कन्याओं का विवाह श्री कृष्णजी से कर दिया।

'इधर अक्रूर उस मणि को लेना चाहते थे। एक बार जब श्रीकृष्णजी पाण्डवों की खोज खबर लेने वार्णावत नगर गये थे, उस समय अक्रूर ने सत्राजित को शतधन्वा से मरवा डाला और स्यमंतक मणि लेली। सत्राजित की पुत्री सत्यभामाने श्री कृष्णजी से जाकर सब हाल बतलाया। श्री कृष्णजी तुरंत द्वारका को लौट आये। शतधन्वा ने उनसे घोर युद्ध किया। किन्तु प्रतिज्ञा के अनुसार अक्रूर ने शतधन्वा की सहायता नहीं की, वे चुपचाप द्वारका छोड़कर भाग गये। शतधन्वा निराश होकर युद्ध से भागा। किन्तु मिथिला के पास जाकर उस का श्रीकृष्णजी ने वध कर डाला। पर खोजने पर भी उसके पास स्यमंतक मणि न मिली। इधर बलरामजी से श्रीकृष्णजी ने यह सब हाल बतलाया तो उन्हें विश्वास न हुआ। वे कुपित हो

सबको छोड़कर मिथिलापुरी में चले गये। मिथिला नरेश ने उन्हें आदर के साथ अपने यहाँ रक्खा। इसी बीच में दुर्योधन ने मिथिलापुरी में रह कर बलरामजी से गदा युद्ध की शिक्षा ली।

'इधर मणि के प्रताप से अक्रूर जी बड़े-बड़े यज्ञ करने लगे। जब उनके विषय में लोगों को संदेह हुआ, तो वे काशी चले गये। जाति द्रोह बचने के लिए कृष्णजी ने उन्हे न रोका। उनके द्वारका से चले जाने पर नाना प्रकार के उपद्रव होने लगे। तब सबके कहने से श्रीकृष्णजी उन्हें मनाकर द्वारका में वापस लाये। इसी बीच में बलरामजी को भी सब मनाकर द्वारका में लौटा लाये। अक्रूरजी ने अपनी कन्या का विवाह श्रीकृष्ण जी के साथ कर दिया। एक समय सभा में श्री कृष्णजी ने अक्रूर जी से स्यमतक मणि के बारे में पूछा। अक्रूर जी ने मणि निकाल कर देदी। सब के सामने श्री कृष्णजी ने उस मणि को फिर से अक्रूर को देदिया। इस प्रकार मणि का काण्ड समाप्त हुआ।

अध्याय ४०—४१

जन्मेजय के प्रश्न, अवतारों की कथा

जनमेजय ने पूछा—'जिन अविनाशी, अजन्मा, सर्व-व्यापो, सर्वशक्तिमान परमात्मा के सहस्र सर, सहस्रनेत्र

सहस्रमुख, सहस्र भुजाएँ हैं जो सब के आदि कारण हैं उन्होंने वराह, वामन, नृसिंह आदि अवतार क्यों और कैसे धारण किये ?'

वैशम्पायनजी बोले—'भगवान यज्ञ और यज्ञ की सामग्री में व्याप्त हैं। वे लोक-कल्याण के निमित्त प्रकट होते हैं। जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है तब भगवान दुष्टों के नाश और सज्जनों की रक्षा तथा धर्म की स्थापना के लिए अवतार लेते है और अपने कर्मों का आदर्श संसार के सामने रखते है। परमात्मा की एक मूर्ति आकाश में स्थित हो कर लोक कल्याण के निमित्त तप करती रहयी है। दूसरी मूर्ति शेषशायी से सृष्टि प्रकट होती है। इसी मूर्ति से ब्रह्मा, सनत्कुमार, मनु आदि प्रकट होते हैं। जब यह पृथ्वी जल में मग्न थी तब इसके उद्धार के निमित्त भगवान ने दिव्य वराह रूप धारण कर उस का उद्धार किया और उसे लोक-कल्याण के निमित्त जल पर स्थापित किया। सत्ययुग में हिरण्यकशिपु नामक दानव ने घोर तप कर ब्रह्माजी से अजेय वर प्राप्त किया और प्रबल होकर देवगण को स्वर्ग से निकाल कर उसने अधर्म करना और तीनों लोकों को सताना प्रारभ किया। तब देवगण के प्रार्थना करने पर भगवान ने नृसिंह का अवतार लेकर हिरण्यकशिपु का वध किया और सब को

अभयकर धर्म की स्थापना की। इसके अनन्तर राजा बलि के यज्ञ में देवगण के कल्याण के निमित्त भगवान ने वामन रूप में प्रकट होकर सारी पृथ्वी को ग्रहण किया और देवगण को उसे लौटा कर सन्मार्ग की पुष्टि की। भगवान ने पाप की वृद्धि को रोकने और धर्म की वृद्धि के निमित्त दत्तात्रेय का अवतार लिया। अनन्तर क्षात्रधर्म से च्युत सहस्रबाहु अर्जुन तथा अन्य क्षत्रियों के नाश के निमित्त परशुराम के रूप में प्रकट हो इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रिय-हीन कर उसे यज्ञों में कश्यपजी को दान में देदिया। यथा समय परम अजेय रावण, कुम्भकर्ण, सुबाहु आदि के नाश के निमित्त रामचन्द्रजी के नयनाभिराम रूप में प्रकट हो विश्वामित्र जी से देव दुर्लभ शास्त्रास्त्रों को प्राप्त कर सीताजी से विवाह किया और धर्म की स्थापना कर जगत का कल्याण किया। राम राज्य में सभी को इतना सुख था कि वह आदर्श राज्य माना गया है। माथुर कल्प में भगवान ने श्री कृष्णजी के रूप में प्रकट होकर केशी, कंस, नरकासुर, कालयवन आदि का नाश किया और धर्म की स्थापना की। वेदव्यास के रूप में प्रकट हो कर वेदों के विभाग किये और लोक-कल्याण के निमित्त महाभारत और पुराणों की रचना की। जब घोर कलि लग जायगा और अधर्म तथा अन्याय के कारण प्रजा नष्ट होने

लगेगी तब संभल ग्राम में विष्णुयशा नामक ब्राह्मण के घर में भगवान कल्कि रूप में प्रकट होकर अधर्म का नाश और धर्म की स्थापना करेंगे। तभी कलिका अन्त और सत्ययुग का प्रारभ होगा। मुनियों ने भगवान के नाना प्रकार के अवतारों की लालाओं का वर्ण किया है।'

अध्याय ४२-४८

तारकामय-देवासुर संग्राम, विष्णु का सबको अभय करना

वैशम्पायनजी बोले---'सत्ययुग में भगवान ने देवगण की रक्षा के लिए इन्द्र के छोटे भाई के रूप में अपने को प्रकट किया। उसी काल में बड़ा तारकामय नामक विकट युद्ध हुआ। उसमें दानवगण की माया और शक्ति के कारण देवगण व्याकुल होगये। तब सबने विष्णु भगवान की शरण ली। भगवान ने अपने प्रभाव से दानवों की माया दूर कर दी और देवगण को धैर्य बधा कर उन्हे प्रसन्न किया। उस अवसर पर नाना प्रकार के भीषण, अमोघ अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित हो कर नाना प्रकार के मनमाने वाहनों पर सवार होकर परम प्रतापी मय, तार, विरोचन वाराह, त्वष्टा, श्वेत, अरिष्ट, बाहु आदि प्रमुख दैत्य असंख्य दैत्य सेना को ले देवगण पर आक्रमण करने लगे।

'इधर दिव्य अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होकर ऐरावत

पर वज्रधारी इन्द्र, गरुड़ पर चक्रधारी विष्णु, पुष्पक पर गदाधारी कुवेर, कालदण्डधारी यम, पाशधारी वरुण असंख्य देव-सेना को लेकर राक्षसों का सामना करने के लिए आगे बढ़े। युद्ध प्रारंभ हुआ। दानव माया-युद्ध के द्वारा देवगण को विकल करने लगे। पूर्व समय में ऊर्व-मुनि ने उग्र तपकर ब्रह्माजी के समान शक्ति प्राप्त की और अग्नि के समान परम तेजस्वी और्व नामक पुत्र उत्पन्न किया। और्व ऋषि ने अपने तप के प्रभाव से अग्निमय घोर माया की सृष्टि की। उसी अग्निमय-माया को प्राप्त कर दैत्यों ने उसके प्रयोग से देवगण को नष्ट करना प्रारंभ किया। देवताओं को नष्ट होते देख विष्णु भग-वान की आज्ञा से पवन और अग्नि ने उस माया से देवगण की रक्षा की। विष्णु भगवान ने काल-नेमि तथा अन्य सभी दैत्यों को नष्ट कर देवगण को अभय करते हुए कहा—'इस तारकामय युद्ध से केवल राहु और बलि ही जीवित बच गये हैं, अब पूर्व दिशा का इन्द्र, पश्चिम दिशा का वरुण, दक्षिण का धर्मराज और उत्तर का कुवेर शासन करें।' धर्म-रक्षा की व्यवस्थाकर विष्णु भगवान ब्रह्माजी के साथ ब्रह्मलोक को चले गये।

अध्याय ४६-५५

विष्णु विषयक प्रश्न, देवगण का भगवान को जगाना,
पृथ्वी तथा नारद द्वारा भार उतारने के लिए प्रार्थना

जनमेजय के पूछने पर वैशम्पायन जी बोले—'तीनों लोक में विष्णु व्याप्त हैं, उनके प्रभाव को पूरी तरह से कोई नहीं जानता। इन्हीं विष्णु भगवान से सब उत्पन्न होते हैं, सब इन्हीं के द्वारा जीवित रहते हैं और अन्त ने इन्हीं में मिल जाते हैं। सभी यज्ञ, कर्म आदि विष्णु मय हैं। भगवान विष्णु के ब्रह्म-लोक में पधारने पर ब्रह्म-लोक वासियों ने उनका उचित आदर-सत्कार किया। भगवान ने सब को यथा योग्य आदर देकर योग-निद्रा का आश्रय लिया। इसी बीच में पृथ्वी पर दुष्ट राजाओं तथा उनकी सेनाओं का भार बढ़ गया। तब ब्रह्माजी ने देवगण के साथ स्तुति कर भगवान को जगाया और उनसे पृथ्वी के भार को उतारने की प्रार्थना की। भगवान सब के साथ सुमेरु पर्वत पर देवसभा में गये। वहाँ विश्व-कर्मा द्वारा रची गई दिव्य पदार्थों से भूषित देवसभा में भगवान आसीन हुए। उस समय सब के यथा स्थान बैठ जाने पर पृथ्वी ने हाथ जोड़कर नम्रतापूर्वक भगवान से विनय की—आप ने सदा मेरा भार उतारा है। इस समय में धर्म-विरोधी राजाओं और उनकी असंख्य सेना के भार

से व्याकुल हो रही हूँ। अब इस बार भी आप मेरे बोझ को हलका करने की कृपा करें।'

पृथ्वी के चुप होने पर देवगण ने ब्रह्माजी से पूछा कि हम लोग क्या करें। ब्रह्माजी बोले—'पूर्व समय में समुद्र के मर्यादा छोड़कर बढ़ने पर मैंने उसे शाप दिया था कि तू पृथ्वी पर मनुष्य की योनि में जन्म लेगा। जब उसने बहुत अनुनय-विनय की तो मैंने यह व्यवस्था कर दी थी कि वह राजा शान्तनु हो और गंगा उसकी रानी बनें और अष्टवसुओं को जन्म दें। इस समय शांतनु भरत वंश में जन्म लेकर राज्य कर रहे हैं। तुम लोग भी अंशावतार से पृथ्वी पर प्रकट होकर भगवान के कार्य में योग दो।' ब्रह्माजी की आज्ञा मानकर सब देवगण अपने-अपने अंश से पृथ्वी पर प्रकट हुए।

सब देवगण के अवतार ले चुकने पर नारदजी विष्णु भगवान के पास जाकर पूजा-स्तुति के अनन्तर बोले—'तारकामय देवासुर-संग्राम में जिन अजेय, घोर कर्मा दैत्यों को आपने मारा था वे सब विभिन्न रूप से पृथ्वी पर अवतार लेकर घोर अधर्म कर रहें हैं। प्राचीन समय में एक वन में लवणासुर रहता था। उसने राम-चन्द्रजी की निन्दा कर उन्हें युद्ध के लिए प्रचारा था। तब शत्रुघ्न ने उस दानव को मारकर उस वन में मथुरा नामक पुरी बसाई थी। कालनेमि उसी पुरी में इस समय कंस के

रूप में प्रकट होकर अत्याचार कर रहा है तथा अन्यान्य असुर अन्य अनेक राजाओं के रूप में प्रकट होकर धर्म का नाश और अधर्म की वृद्धि कर रहे हैं एवं प्रजा को बुरी तरह सता रहे हैं। आप अब पृथ्वी पर अवतार ले उन दानवों का संहार कर प्रजा और धर्म की रक्षा कीजिये।'

नारद के वचन सुनकर भगवान बोले—'मैं उन सबका पूरा हाल जानता हूँ। मैं पृथ्वी का भार उतारूँगा। ब्रह्माजी मुझे अवतार लेने का उपयुक्त स्थान बतलायें।'

भगवान के वचन सुनकर ब्रह्माजी बोले—'मैंने इसकी व्यवस्था पहले ही से कर ली है। पूर्व समय में कश्यपजी ने यज्ञ के समय वरुण की गौ का हरण किया था और देव-गण के बहुत समझाने पर भी अपनी अदिति और सुरभी नामक पत्नियों के बहकावे में पड़कर उन्होंने उस गौ को नहीं लौटाया था। तब उन्हें शाप दिया गया कि तुम पृथ्वी पर अपनी पत्नियों सहित गोप के घर में जन्म लोगे। वे ही इस समय वसुदेव, देवकी और रोहणी के रूप में मथुरा के निकट प्रकट हुए हैं। आप उन्हीं के यहाँ अवतार लेकर गौओं का पालन करते हुए पृथ्वी का भार उतारिये।'

ब्रह्माजी के इस प्रकार निवेदन तथा देवगण के प्रार्थना करने पर विष्णु भगवान ने पृथ्वी पर अवतार लिया।'

हरिवंश-पर्व समाप्त

हरिवंश-पुराण

विष्णुपर्व

अध्याय १

नारद का कंस को सावधान करना

वैशम्पायनजी बोले—'जब विष्णु भगवान ने अवतार लेने का उपक्रम किया और सब देवगण अपने-अपने अंश से पृथ्वी पर अवतीर्ण हो चुके तब नारदजी कंस के पास गये। दूत के मुख से उनके आगमन की सूचना पाकर कंस मंत्रियों सहित पुरी से बाहर निकल कर नारद जी की अगवानी ले कर महलों में लाया और उन्हें सिंहासन पर बैठाकर विधिपूर्वक पूजा की। तब नारदजी ने हँस कर कहा—'मैं तीर्थों में भ्रमण करता हुआ सुमेरु पर्वत पर गया। वहाँ उस समय देवसभा में तुम्हारे मारे जाने के उपाय सोचे जा रहे थे। सब देवगण अपने-अपने अंश से पृथ्वी पर अवतार ले चुके हैं। तुम्हारी बहन देवकी के आठवें गर्भ से विष्णु भगवान अवतार ले कर तुम्हारा संहार करेंगे। विष्णु भगवान ही सब देवगण के

सर्वस्व हैं। पृथ्वी पर देवगण उनकी सहायता करेंगे। मैं तुम्हें सावधान करने आया हूँ।'

यह कह कर नारदजी चले गये। कंस हँस कर कहने लगा कि देवगण में तो कोई ऐसा नहीं है जो मेरे सामने ठहर सके। नारदजी का तो स्वभाव ही लड़ाई लगाने का है। फिर उसने केशी, धेनुक, वृषासुर, पूतना आदि को आज्ञा दी कि तुम देवगण को और उनके सहायकों को नष्ट कर डालो।

अध्याय २-५

योगमाया को आज्ञा, कृष्ण-जन्म, नन्द का व्रज में जाना

वैशम्पायनजी बोले—'कंस ने देवकी तथा वसुदेव के ऊपर पहरे बैठाल दिये और ऐसी चतुर स्त्रियाँ नियुक्त कर दीं जो गर्भ के दिन गिन कर सब बातों की ठीक खबर देती रहें। उसने देवकी के पहले सात गर्भों को भी नष्ट करने का निश्चय कर लिया।

'इधर उसके निश्चय को जान कर विष्णु भगवान ने छः दानवों को देवकी के पहले छः गर्भों में भेजने की व्यवस्था की। पूर्व समय में हिरण्यकशिपु के छः पुत्र थे, जिन्होंने ब्रह्माजी की आराधना कर उनसे दिव्य वर प्राप्त किये थे। यह देख हिरण्यकशिपु ने उन्हें शाप दिया

कि तुम मनुष्य की योनि में जन्म लोगे और जन्मते ही मार डाले जाओगे। यह कहकर उसने उन्हें पाताल में जल-गर्भ में बन्द कर दिया। भगवान ने उन्हीं छः दानवों को जल-गर्भ से मुक्त कर देवकी के गर्भ में जाने की आज्ञा दी। उन्हीं ने क्रम से देवकी के गर्भ में बास किया और हर बार कंस ने जन्मते ही प्रत्येक बालक को मार डाला।

'अन्त में भगवान ने सातवीं बार शेषजी को भेजा और योगमाया को आज्ञा दी कि तुम सातवें महीने में देवकी के गर्भ से निकाल कर शेषजी को रोहणी के गर्भ में रख देना। फिर तुम यशोदाजी के गर्भ से जन्म लेना और उसी समय मैं देवकीजी के गर्भ से प्रकट होऊँगा। तुम्हें कंस शिला पर पटकेगा। तुम आकाश में चली आना और फिर देवगण से पूजित होकर विंध्यक्षेत्र में स्थापित होना। संसार में तुम्हारी पूजा सर्वत्र होगी और तुम्हारी आराधना द्वारा मनुष्य सभी प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त करेंगे। तुम मेरे ही समान शक्ति-शालिनी और भुक्ति-मुक्ति दायिनी होओगी।' आर्यास्तव द्वारा योगमाया को प्रसन्न कर भगवान ने भू-भार हरण की व्यवस्था की।

'सातवाँ गर्भ देवकी के पेट में आया। किन्तु सातवें महीने में योगमाया ने उसे निकालकर रोहिणी के पेट में रख दिया। सबने यही जाना कि देवकी का गर्भ गिर गया।

आठवीं बार भगवान स्वयं देवकी के गर्भ में आये; और यथासमय अभिजित नक्षत्र, जयंती रात्रि और विजय मुहूर्त में अपने दिव्य स्वरूप को उन्होंने प्रकट किया। आकाश में मनोहर बाजे बजने लगे, देवगण दिव्य पुष्पों की वर्षा कर स्तुति करने लगे। वसुदेवजी ने भुवन-मोहन रूप के दर्शन कर उनसे प्रार्थना की कि आप अपने इस दिव्य रूप को छिपाकर कंस से त्राण दिलाइये। भगवान ने उन्हें यशोदा के यहाँ जाने की आज्ञा दी। वसुदेवजी शिशुरूप-भगवान को छिपाकर यशोदा के यहाँ ले गए। उसी समय भगवान की आज्ञा के अनुसार योगमाया कन्या के रूप में यशोदा के यहाँ प्रकट हुई थीं। किन्तु माया के प्रभाव से यशोदा को इसका पता न था। वसुदेवजी ने भगवान को यशोदा के पास सुला दिया और कन्या को उठाकर वे अपने स्थान पर ले आये। यह सब हो जाने पर पहरेवालों की नींद टूटी। कंस को देवकी के शिशु के जन्म का पता लगा। वह दौड़ा हुआ आया और व्याकुल होकर उसने देवकी के हाथों से नवजात शिशु को छीन लिया। देवकी ने बहुत अनुनय-विनय की, अनेक प्रकार से समझाकर रोते-हुए उससे कन्या को न मारने का अनुरोध किया, किन्तु कंस न माना। उसने कन्या को घुमाकर शिला पर पटका। कन्या उसके हाथ से छूटकर आकाश में चली गई और वहाँ

दिव्य रूप धारण कर कंस से बोली—'हे दुष्ट ! तूने व्यर्थ मुझे मारने का प्रयास किया, मैं अन्त समय में तेरा रुधिर पान करूँगी।' देवगण ने आकाश में देवी की विधिपूर्वक पूजा की। यादवों तथा संसार के अन्य मनुष्यों द्वारा भी देवी की सर्वत्र पूजा होने लगी।

'देवी का यह अद्भुत रहस्य देख कंस को बड़ा आश्चर्य और भय हुआ। उसने देवकी के चरणों पर गिर-कर बिलखते हुए क्षमा माँगी और गिड़गिड़ाकर कहा—'मैंने अपने प्राणों की रक्षा के लोभ में पड़कर तुम्हारे पुत्रों का वध किया है। किन्तु मैं काल को नहीं टाल सकता। काल की प्रेरणा से ही मैंने तुम्हारे पुत्रों को मारा है। मुझे निमित्त मात्र समझकर क्षमा करने की कृपा करो।'

देवकी ने अपने भाई को इस प्रकार अपने चरणों में पड़ा हुआ बिलखते देख यह कहकर उसे क्षमा कर दिया कि काल के आगे किसी का वश नहीं चलता, इसमें तुम्हारा कुछ अपराध नहीं है, काल के कारण ही मेरे पुत्रों का नाश हुआ है। देवकी से क्षमा प्राप्त कर कंस अपने महलों को चला गया।

'वसुदेवजी को पहले ही मालूम होगया था कि व्रज में उनकी स्त्री रोहिणी ने एक सुन्दर पुत्र को जन्म दिया है। कंस से छुट्टी पाकर वे नन्दजी के पास गये और

उन्हें समझाते हुए उन्होंने कहा—'अब आप यशोदा को लेकर तुरन्त व्रज में जाकर रहिए और रोहिणी में उत्पन्न मेरे पुत्र और इस बालक की अच्छी तरह से रक्षा कीजिये। बालकों की रक्षा में खूब सावधान रहियेगा। बच्चों के ऊपर बड़े-बड़े संकट आते हैं। खूब सावधान होकर संकटों से उनकी रक्षा करते रहियेगा। उस प्रदेश में केशी आदि अनेक दुष्ट दानव रहते हैं। उनसे बालकों की रक्षा करते रहियेगा। अब शीघ्र व्रज में जाकर आप बाल-लीला का सुख भोगिये।' यह कह उन्होंने चुपके-चुपके नन्दजी को विदा किया। नन्दजी यथा समय सावधानी से व्रज में जाकर रहने और बालकों की रक्षा करने लगे।'

अध्याय ६—१०

शकटासुर-पूतना-वध, यमलार्जुन-भंग, वृक-दर्शन, वृन्दावन-गमन, वर्षा वर्णन

वैशम्पायन जी बोले—'नन्दजी व्रज में रह कर गोप कार्य करते हुए सावधानी से बालकों की रक्षा करने लगे। यथा समय बालकों का नाम-करण संस्कार किया गया। बड़े का नाम संकर्षण और छोटे का नाम कृष्ण रक्खा गया। शिशु अवस्था में ही एक बार यशोदाजी श्रीकृष्णजी

को शकट के नीचे सुला कर स्नान करने चली गईं। श्रीकृष्णजी ने बाल-लीला करते-करते हाथ-पैर उछालते हुए एक लात शकट के मारी। वह उलट कर नीचे गिर गया। उस पर रक्खे हुए बर्तन आदि सब नीचे गिरकर चूर-चूर हो गये। भयभीत होकर यशोदा दौड़ीं और किसी तरह से श्रीकृष्णजी को नीचे से उठा कर छाती से लगा लिया। नन्द भी दौड़ कर आये। श्रीकृष्णजी को सकुशल देख कर सबको बड़ा आनन्द और आश्चर्य हुआ। सब कहते थे कि न तो आँधी ही चली, न साँड़ों ने लड़ कर धक्का ही दिया। न भूकम्प ही आया, यह शकट गिरा तो गिरा कैसे? वहाँ कुछ गोप-बालक खेल रहे थे। उन्होंने बतलाया कि श्रीकृष्णजी ही ने लात मार कर शकट को गिराया है। किन्तु उन बालकों की बात का किसी ने विश्वास न किया।

'कुछ समय बाद कंस की भेजी हुई पूतना नामक राक्षसी व्रज में आई और अपने विष लगे हुए स्तन को श्रीकृष्णजी के मुँह में दे, उन्हें दूध पिलाने लगी। श्रीकृष्णजी ने दूध के साथ ही उसके प्राण भी खींच लिये। वह अपना विकराल-रूप प्रकट मर कर पृथ्वी पर गिर पड़ी। उसके गिरने से बड़ा भयानक शब्द हुआ। नन्दजी तथा गोपी-गोप दौड़ कर वहाँ आये। पूतना को देख कर सब को बड़ा आश्चर्य हुआ। यशोदा ने श्रीकृष्णजी को

उठा कर पोंछा-पुचकारा। गोपगण ने पूतना के शरीर को जला दिया। उससे बड़ी सुगंधि निकली।

'दिन बीतते गये। संकर्षण (बलराम) और श्रीकृष्ण जी चन्द्र-कला की तरह बढ़ते गये। उनकी अद्भुत, मनोहर बाल-लीलाओं को देखकर गोपी-गोप अघाते न थे। एक बार श्रीकृष्णचन्द्र जी गोप-बालकों के साथ खेल में ऐसे मगन हो गये कि यशोदा के बहुत बुलाने पर भी वे खेल छोड़ कर न आये। तब यशोदा ने क्रोध कर उन्हें पकड़ लिया और उनको ऊखल में बाँध दिया। यशोदाजी के चले जाने पर श्रीकृष्णजी ऊखल को खींचते हुए यमलार्जुन नामक व्रज के बहुत पुराने वृक्षों के बीच में ले गये और दोनों के बीच में भिड़ाकर कर ऊखल को इस तरह खींचा कि वे दोनों वृक्ष जड़ के उखड़ कर पृथ्वी पर गिर पड़े। उनके गिरने के घोर शब्द से पृथ्वी काँप उठी। गोपी-गोप दौड़ कर आये। श्रीकृष्णजी दोनों वृक्षों के बीच में बैठे हुए हँस रहे थे। नन्द-यशोदा ने उन्हें उठा कर छाती से लगा लिया। सबको आश्चर्य हुआ कि-वर्षा, बिजली, हाथी के बिना ही ये दोनों वृक्ष उखड़ कैसे गये। वहाँ कुछ गोप-बालक खेल रहे थे। उन्होंने बतलाया कि श्रीकृष्णजी ने ऊखल को अड़ा कर वृक्षों को उखाड़ा है, किन्तु किसी को उनकी बात का विश्वास न हुआ। श्री

कृष्णजी के पेट से रस्सी बाँधी गई थी, इसी कारण उस समय से उनका नाम 'दामोदर' पड़ गया।

'धीरे-धीरे श्रीकृष्णजी बढ़ कर सात वर्ष के हुए। दोनों भाई सुख-पूर्वक व्रज में लीला करते हुए विचरने लगे। श्रीकृष्णजी पीतांबर धारण किये, केसर की खौर लगाये, मोर-मुकुट और वनमाला से सुशोभित हो वंशी बजाते हुए गोप-गोपियों को आनन्द देते रहते थे। बल-रामजी नीलांबर धारण कर कमल की माला और मुकुट से सुसज्जित हो कर अनेक प्रकार की क्रीड़ा करते रहते थे। दोनों भाई अन्य गोप-बालकों के साथ बछड़ों को लेकर वन में उन्हें चराने जाने लगे। वे वहाँ नाना प्रकार के खेल खेलते और आनन्द करते थे। कुछ समय तक व्रज में लीला करने के अनन्तर श्रीकृष्णजी ने बलरामजी से कहा—'अब इस वन में तृण, दल, काष्ठ आदि की कमी पड़ गई है। पर्वतों का भूषण घोष है, घोष का भूषण वन है, वन का भूषण गौ हैं और गौएँ ही हमारी परम गति हैं। इस वन में गौएँ सुख से रह नहीं सकतीं। इस कारण हमें अब दूसरे वन में जाना चाहिए। मैंने सुना है कि पास ही में तृण, लता, वृक्ष, जल, फल से परिपूर्ण वृन्दा-वन है, जहाँ सभी ऋतुएँ सुखदायिनी होती हैं। उसी के पास परम रमणीक गोवर्धन पर्वत है और सुन्दर, सुहावना

भांडीर नामक वट का विशाल वृक्ष है। समीप ही यमुना का रमणीक तट भी है। वहीं चलकर रहना उचित है।' यह कह उन्होंने अपने शरीर से मांस-भक्षी भयानक भेड़ियों को उत्पन्न कर दिया। उन नृशंस भेड़ियों के उपद्रव और त्रास के कारण व्रज के गोप-गोपी घर के बाहर तक निकलने का साहस न कर सकते। तब सब ने सलाह की कि अब व्रज में रहने से प्राण न बचेंगे, इस कारण इस स्थान को त्यागकर वृन्दावन में चलना उचित होगा। यह निश्चित होते ही इसकी घोषणा कर दी गई कि सब अपनी-अपनी गौओं तथा वस्तुओं को सँभालकर वृन्दावन चलने की तैयारी करो। देखते-देखते सब तैयार होगये। गाड़ियों पर सब सामान लादा गया। गोपियाँ नाना प्रकार के वस्त्रों को पहनकर चल खड़ी हुईं। वे ऐसी लगती थीं मानो आकाश में तारे छिटके हों और इन्द्रधनुष शोभा चढ़ा रहा हो। व्रज का पहला स्थान धीरे-धीरे खाली हो गया। सुखपूर्वक चलकर वे सब यथा समय वृन्दावन के सुरम्य स्थान पर आये। छकड़े अर्धचन्द्राकार आकृति में खड़े कर एक योजन चौड़ा और आठ योजन लम्बा भूभाग घेरा गया। बीच में दहेंड़ियाँ, मथानियाँ आदि रखकर यथाविधि घोष का निर्माण किया गया। चारों ओर काँटेदार डालें लगाकर वाड़ी तैयार की गई। वृन्द

काटकर भूमि ठीक की गई। प्रत्येक गोप ने अपने-अपने लिए घर बनाकर उसमें यथा स्थान अपने सामान को रक्खा और पलंग पर सुन्दर चर्म आदि बिछा दिये। अग्नि प्रज्वलित की गई। गौएँ ठीक से रक्खीं गईं। दूध-दही-माखन का कार्य सुखपूर्वक चलने लगा। वृन्दावन गोपी-गोपों का रम्य स्थान बन गया। श्रीकृष्णजी सुखपूर्वक बाललीला द्वारा सब को प्रसन्न करने लगे।

'वृन्दावन में गरमी के दिनों में भी कष्ट न था। श्रीकृष्णजी यमुना में जल-विहार कर सब को सुख देते। वन में गौओं को खूब उत्तम तृण मिलता। कुछ समय बाद वर्षा प्रारम्भ हुई। काले, सफेद, नीले, पीले, लाल, ऊदे बादलों से आकाश छा गया। बकुलों की उड़ती हुई पंक्ति और क्षण-क्षण में चमकने वाली बिजली ने बादलों की शोभा बेहद बढ़ा दी। ग्रीष्म से भुनी हुई पृथ्वी वर्षा का जल पाकर हरी हो उठी। लता-वृक्ष, लहलहा उठे; पशु-पक्षी, स्त्री-पुरुष उमंग से भरकर कलोलें करने लगे। तृण, पौधों, लताओं, वृक्षों से वन भर उठा। कदम्ब के फूलों ने दशों दिशाओं को सुगंधि से भर दिया। मत्त भौंरों के गुंजन और निरन्तर नाचने वाले मोरों के कूजन ने एक अपूर्व समा बांध दी। बलरामजी ने श्रीकृष्णजी से कहा—'मेघों ने तुम्हारी कृष्ण-कमलवत मोहनी आभा को चुरा

कर विचित्र शोभा धारण की है। जल के कारण वन के विस्तार का पता ही नहीं चलता। मार्ग लुप्त हो गये हैं। सभी प्राणी आनन्द मग्न हैं। वृन्दावन नन्दन-कानन की शोभा को प्राप्त कर चुका है।' इस प्रकार वन तथा वर्षा का वर्णन करते तथा अपनी अद्भुत् बाललीला को दिखाते हुए दोनों भाई सभी को सुख देने लगे।

अध्याय ११-१४

कालीय-नाग को यमुना से भगाना, धेनुक तथा प्रलम्ब-वध

वैशम्पायनजी बोले—'एक बार नटवर कृष्ण ने बलराम के बिना ही वन में गमन किया। वंशी बजाते, नाना प्रकार की क्रीड़ा करते थे यमुना तीर वे एक ऐसे स्थान पर पहुँचे जहाँ जल बड़ा गहरा और मनोहर था, तट बड़ा रमणीक था, रेत और सीपें चमचमा रहीं थीं; किन्तु उस स्थान पर योजन भर तक न तो कोई पशु-पत्ती पानी पी सकता था और न वृत्त-लता का कहीं पता ही था। भांडीरवट के पास क्रीड़ा करते हुए श्रीकृष्णजी ने सोचा कि इस स्थान को कालिय नाग ने अपने विष से भयावह बना रक्खा है। इस नाग को भगा कर इस स्थान को निरापद करना चाहिए। यह विचार कर वे कदम्ब के पेड़ पर चढ़ कर यमुना में कूद पड़े। उनके कूदने से बड़ा शब्द हुआ।

उस शब्द से तथा जलके क्षुभित होने से कालीय सर्प किसी शत्रु का आक्रमण जान अपने पांचों मुखों से विष की ज्वाला निकालता उन पर झपटा और उसने उन्हें अपने शरीर से जकड़ लिया। सर्प की फुफकार से सारा यमुना जल खौलने लगा। इधर गोप-कुमारों से यह हाल सुनकर नन्द, यशोदा तथा गोपी-गोप विलाप करते हुए जमुना किनारे दौड़े आये। श्रीकृष्णजी को नाग की पाश में बंधा देख वे सब व्याकुल हो मूर्छित होने लगे। उसी समय बलराम के कहने से श्रीकृष्णजी ने नाग को परास्त कर उसके सर पर नाचना प्रारम्भ किया। अन्त में नाग के मुख से रुधिर बहने लगा, उसका दम निकलने लगा। उसने प्रार्थना कर जीवन-दान मांगा। श्रीकृष्णजी ने यह कह कर उसे वहाँ से बिदा कर दिया कि अब तुम यहाँ से समुद्र में चले जाओ, मेरे पदों के चिह्न तुम्हारे सर पर देखकर गरुड़जी तुम्हें न सतायँगे। नाग के चले जाने पर श्रीकृष्णजी मुसकराते हुए किनारे पर आये। नन्द, यशोदा, गोपी-गोपों ने मगन हो बड़े प्रेम से उन्हें गले लगाया, बड़ा आनन्द मनाया। उसी दिन से यमुना का वह भाग भी निर्मल और शुद्ध हो गया। सब ने श्रीकृष्णजी को अलौकिक-शक्ति-सम्पन्न मान कर उन्हें अपना संरक्षक बनाया।'

'कुछ समय बाद बछड़ों को लिए हुये कृष्ण-बलराम

गोपों सहित विचरते हुए ताल-वन में जा पहुँचे। वहाँ बड़े-बड़े ताड़ के वृक्ष सुन्दर सुगंधित फलों से सुशोभित खड़े हुए थे। श्री कृष्णजी गोपों के साथ उन सुगंधित फलों का स्वाद लेना चाहते थे। उनके कहने से बलरामजी ने ताड़ के वृक्षों को हिला-हिला कर फलों को गिराना प्रारम्भ किया। फलों के गिरने से बड़ा शब्द हुआ। उसे सुनकर गधे का रूप बनाये हुए धेनुकासुर नामक राक्षस गरजता हुआ वहाँ आया और बलदेवजी के ऊपर उसने आक्रमण किया। दोनों में बड़ा संग्राम हुआ। अन्त में बलरामजी ने उसे तथा उसके सहायक अन्य राक्षसों को मार गिराया। तभी से वह वन राक्षसों से रहित हो कर निरापद हो गया।

'ताल-वन से घूमते हुए कृष्ण-बलराम गौओं-गोपों सहित भांडीर-वन में आये और पुष्पों-पत्तों से विचित्र वेष बना कर आपस में खेलने लगे। इसी बीच में प्रलंबासुर नामक दानव कृष्ण-बलराम को मारने के विचार से वहाँ आया और गोपों का-सा रूप बना कर वह उनके साथ क्रीड़ा करने लगा। कुछ समय बाद अवसर देखकर बलराम को लेकर वह भागा और अपना विकराल रूप प्रकट कर उन्हें मारने का उपक्रम करने लगा। तब श्री कृष्णजी के कहने से बलरामजी ने अपने दिव्य रूप और पराक्रम का स्मरण कर उसके सर पर जोर से एक घूँसा

मारा। प्रलम्बासुर मर कर पृथ्वी पर गिर पड़ा। आकाश में देवगण और पृथ्वी पर गोपगण बलरामजी की प्रशंसा करने लगे। तभी से उनका नाम बलराम पड़ गया।

अध्याय १५-१६

इन्द्र की पूजाबन्द, गोवर्धन तथा गौओ की पूजा, इन्द्र का कोप, प्रलय की वर्षा, गोवर्धन के द्वारा गौओ-गोपों की रक्षा, इन्द्रा का कृष्णजी की शरण मे आना।

वैशम्पायनजी बोले—'वन से लौटकर कृष्ण-बलराम ने वृन्दावन में किसी उत्सव की तैयारी देखी। श्रीकृष्ण जी के पूछने पर गोपों ने बतलाया कि सब इन्द्र की पूजा की तैयारी कर रहे हैं। इन्द्र मेघों को और वायु को प्रेरित करके जल बरसाते हैं। उससे तृण-धान्य उत्पन्न होते हैं। उन्हें चरकर हमारी गौएँ पुष्ट होती और दूध देती हैं। गौओं से ही हमारी जीविका चलती है। इस कारण हम इन्द्रदेव की पूजा करते हैं। इन्द्र से हमारा हित होता है। इस कारण उनकी पूजा करना उचित है। गोपों के वचन सुनकर श्रीकृष्णजी बोले—'तुम्हारा यह कहना उचित नहीं है। हमें तो गिरिराज गोवर्धन की ही पूजा करनी चाहिए। उन्हीं से तृण पाकर हमारी गौएँ

दूध देती हैं और पुष्ट होती हैं। इस कारण हमें अपनी गौओं को गोवर्धन के पास ले जाकर गोवर्धन की तथा गौओं की पूजा करनी उचित है। इसी में हमारा सबका कल्याण है। यदि तुम मेरा विश्वास करते हो तो तुरन्त चलकर विधिपूर्वक गोवर्धन और गौओं की पूजा करो।' श्रीकृष्णजी के वचनों को सुनकर गोपगण ने इन्द्र की पूजा को छोड़कर गोवर्धन पर्वत और गौओं की पूजा करना स्वीकार कर लिया। सब गोपों से तीन रोज का दूध एकत्र करके नाना प्रकार के स्वादिष्ट पदार्थ बनाये गये। पर्वत के निकट बलिदान के लिए सुन्दर भेड़-बकरे आदि लाये गये। सुगन्धित भात, पकवान आदि के ढेर लगाये गये और विधिपूर्वक पूजा की गई। कृष्णजी ने पर्वत पर अपना दिव्य रूप प्रकट कर गोपों की पूजा को स्वीकार किया और कहा कि मैं तुम्हारी भक्ति से बहुत प्रसन्न हूँ। तुम अपनी गौओं को उत्तम तृण आदि चराकर सुख-सम्पत्ति प्राप्त करो, मैं धन-धान्य से पूर्ण कर तुम्हारी सदा रक्षा करता रहूँगा। यह कह वे वहाँ से अन्तर्धान हो गये। गोपगण गिरिराज का प्रत्यक्ष दर्शन कर बहुत प्रसन्न हुए। उत्सव मनाते हुए वे सब अपने स्थान को लौट आए।

'इधर अपनी पूजा के स्थान पर पर्वत की और गौओं की पूजा होते देख इन्द्र को बड़ा क्रोध आया। उन्होंने

सामवर्त्तक नामक प्रलय के मेघों को बुला कर आज्ञा दी कि तुम लोग जाकर वृन्दावन तथा गोवर्धन पर्वत को नष्ट कर डालो। प्रलय-काल के मेघों ने वृन्दावन को घेर लिया। मूसलाधार वर्षा होने लगी। प्रलय-काल की आँधी चलने लगी। भयंकर बिजली कड़कने लगी। इन्द्र भी ऐरावत पर चढ़कर वज्र को घुमाते हुए वहाँ आकर डट गये। देखते-देखते वृन्दावन का प्रत्येक स्थान जल-मग्न हो गया। वृक्ष और पर्वत के शिखर टूट-टूट कर गिरने लगे। गौओं और गोपी-गोपों के प्राण संकट में पड़ गए। सब त्राहि-त्राहि पुकारते हुए श्रीकृष्णजी की शरण में उपस्थित हुए। श्रीकृष्णजी ने उन्हें संकट में देख उनकी रक्षा का विचार किया। उन्होंने तुरन्त गोवर्धन पर्वत को उखाड़ कर अपनी अँगुली पर रख लिया और गोपियों-गोपों, गौओं तथा वृन्दावन की सभी सामग्री को उस पर्वत के नीचे इस प्रकार से रख लिया कि जल और वायु से उनकी किसी प्रकार से क्षति न हो। इस प्रकार रक्षा की व्यवस्था कर श्रीकृष्णजी ने गौओं और गोपी-गोपों को अभय कर दिया। सात रात और सात दिन बराबर मूसलाधार वर्षा होती रही। किन्तु गौओं और गोपी-गोपों को तनिक भी कष्ट न हुआ। अन्त में हार कर इन्द्र ने मेघों को वृन्दावन पर से हटा लिया, वर्षा बन्द हुई। सूर्य के प्रकाश से

पृथ्वी खिल उठी। श्रीकृष्णजी का गुणगान करते हुए गोपी-गोप अपने-अपने स्थानों को लौट गये।

'श्रीकृष्णजी के प्रबल प्रताप को देख कर इन्द्र बहुत भयभीत हुए। वे ऐरावत पर चढ़ कर पृथ्वी पर आये और एकान्त में श्रीकृष्णजी के पास जाकर उन्हें प्रणाम कर स्तुति करते हुए इन्द्र ने उनसे अपने अपराधों के लिए क्षमा मांगी। इसके अनन्तर उन्होंने श्रीकृष्णजी को अपना इन्द्र मान कर उनका अभिषेक किया। तभी से उनका नाम 'गोविन्द' पड़ा। इन्द्र ने वर्षा के बाद उनकी और अपनी पूजा की व्यवस्था की। फिर कृष्णजी से निवेदन किया कि मेरे अंश से मेरे पुत्र अर्जुन ने दुष्ट राजा रूपी दानवों के नाश के निमित्त जन्म लिया है, आप अर्जुन की सहायता और रक्षा कीजिये। श्रीकृष्ण जी ने अर्जुन को निरंतर सहायता देने का वचन दिया और इन्द्र को अभय कर विदा किया।

अध्याय २०-२३

क्रीड़ावर्णन, अरिष्टासुरवध, कंस की मंत्रणा और अक्रूर-गमन

वैशम्पायनजी बोले—'इन्द्र के चले जाने पर जब श्रीकृष्णजी गोपों के पास आये तो वे उनकी बड़ी स्तुति-प्रशंसा करने लगे और पूछने लगे कि आप कौन हैं?

आप ऐसे अद्भुत, असंभव काम कैसे कर डालते हैं ? कृष्णजी ने उन्हें समझा कर शान्त किया और कहा कि यथा-समय आप लोगों को सब बातें मालूम हो जायँगी। इस प्रकार सब को समझाकर वे गोपों और गोपियों के साथ क्रीड़ा करने लगे। उनके रूप और गुणों पर मोहित होकर गोपियाँ उन्हें सदा घेरे रहतीं और उनकी लीलाओं का गान तथा नाट्य करती रहती थीं।'

'एक बार रात्रि के सुहावने समय में श्रीकृष्णजी लीला कर रहे थे। उसी अवसर पर अरिष्ट नामक दानव वृषभ का रूप धारण कर वहाँ आया और सबको त्रास देने लगा। वह वृन्दावन में गौओं, गोपों को बहुत सता चुका था और बहुत से बैलों, बछड़ों और मनुष्यों को नष्ट कर चुका था। सामने आते ही श्रीकृष्णजी ने उससे युद्ध किया और उसके सींग उखाड़ कर उसे मार डाला। सबने निर्भय होकर कृष्णजी की बहुत स्तुति-प्रशंसा की।'

'इधर श्रीकृष्णजी के बढ़ते हुए प्रभाव, और यश को सुन-जान कर कंस बहुत भयभीत हुआ। उसने वसुदेव, उग्रसेन, कंक, दारुक, भोज, वैतरण, विकद्रु, कृत-वर्मा, भूरिश्रवा आदि को बुलाकर कहा—'आप लोग वेद, शास्त्र, नीति, न्याय, लोकरीति आदि के ज्ञाता हैं; धर्मरक्षक हैं, शुभ-चरित्रवाले हैं। आपके यश और प्रताप

पृथ्वी पर व्याप्त हैं। आप ने मेरे ऊपर आनेवाले घोर संकट की अब तक उपेक्षा की, यह आश्चर्य की बात है। वसुदेव ने मुझे धोखा देकर मेरे शत्रु कृष्ण को नन्द के यहाँ छिपा कर रक्खा है। नारदजी से मुझे कृष्ण के चोरी से ले जाये जाने और यशोदा की पुत्री के लाये जाने की बातें मालूम हो गई हैं। यह नीच, कृतघ्न वसुदेव मेरे आश्रय में रहकर तथा मेरा दिया हुआ अन्न खाकर भी मेरे वध का प्रयत्न कर रहा है। इसकी कृतघ्नता से बढ़कर कोई दूसरा पाप नहीं हो सकता। इस दुरात्मा के साथ अन्य यादव भी मेरे विरुद्ध कार्य कर रहे हैं। मैंने व्यर्थ में इन दुष्टों, कृतघ्नों को आश्रय दे रखा है। यदुवंशी मुझे मारना चाहते हैं। किन्तु मैं इन्हें उचित शिक्षा दूँगा।' यह कहकर उसने अक्रूर को आज्ञा दी—'वृन्दावन में जाकर तुम कृष्ण, बलराम और गोपों को धनुष-यज्ञ में भाग लेने के लिए लिवा लाओ, वे यहाँ आकर वार्षिक कर दें और उत्सव में सम्मिलित होकर मल्ल-युद्ध दिखलायें। यदि राम-कृष्ण न आये तो उन्हें बलपूर्वक बाँध कर लाना होगा। किन्तु पहले समझा-बुझाकर लाने की चेष्टा करनी चाहिए।'

'कंस ने अनेक प्रकार से वसुदेव तथा यदुवंशियों को बुरा-भला कहकर अपमानित किया। उसकी कठोर बातों

को सुनकर भी वसुदेव उसे क्षमा करते हुए चुपचाप बैठे रहे। किन्तु दूसरे यदुवंशी नीचा मुख किये हुए धीरे-धीरे धिक्-धिक् करने लगे। अन्धक (उग्रसेन के दादा) ने कंस से कहा—'तुमने वसुदेव तथा अन्य यदुवंशियों की इस प्रकार निन्दा करके अच्छा नहीं किया। तुम्हें इस प्रकार अपने बड़ों का अपमान न करना चाहिए। ग्रहों से पता चलता है कि शीघ्र ही छत्रभंग, महानाश और घोर उपद्रव की सम्भावना है। तुम्हारे आचरण के कारण अब यदुवंशी तुम्हारे साथ नहीं रह सकते। उचित तो यह है कि तुम वसुदेव और कृष्णजी से मेल कर लो।' यह कहकर अन्धक ने यदुवंशियों के साथ कंस को त्याग दिया और कंस के विरुद्ध सलाह करते हुए वे लोग वहाँ से चले गये।'

अध्याय २४-२८

केशी-वध, अक्रूर का कृष्णजी को ले जाना, धोबी का बध, कुब्जा का सीधा किया जाना, धनुष-भंग, कंस की जन्म-कथा

वैशम्पायनजी बोले—'मंत्रणा के पहले ही कंस ने श्रीकृष्णजी को मारने के लिए केशी नामक दानव को भेज दिया था। केशी एक घोड़े का रूप बनाकर गौओं, गोपों को नष्ट करता, सबको कष्ट देता वृन्दावन में जा पहुँचा।

उसके उपद्रव से सबके सब त्राहि-त्राहि पुकारने लगे। अन्त में सब के मना करने पर भी श्रीकृष्णजी केशी के सामने गये। उसने उन पर भीषण वेग से आक्रमण किया। घोर संग्राम मच गया। केशी ने उन्हें मारने के लिए अनेक उपाय किये। किन्तु अन्त में कृष्णजी ने उसके मुख में अपना हाथ डाल कर उसे मार डाला। उसके मरने से सब बहुत प्रसन्न हुए। उसी समय नारदजी ने प्रकट होकर श्रीकृष्णजी की स्तुति की और उनसे कंस तथा अन्य दुष्टों का संहार कर भूभार उतारने तथा महाभारत के युद्ध द्वारा संसार की स्थिति को बदल ने की प्रार्थना की। श्रीकृष्णजी ने उन्हें प्रसन्न कर विदा किया। केशी को मारने से कृष्णजी का नाम केशव पड़ा।

'केशी के मारे जाने पर संध्या समय वहाँ अक्रूर जी आये। वे अपने मन में श्रीकृष्णजी के सम्बन्ध में नाना प्रकार की सुन्दर कल्पनाएँ करते हुए आरहे थे। वृन्दावन में आकर वे नन्द, बलराम, कृष्ण से मिले और कंस का सन्देश कह सुनाया। फिर उन्होंने कृष्णजी से कहा कि आप के कारण वसुदेवजी को कंस बड़ा कष्ट दे रहा है। देवकी भी पुत्र-शोक और कंस के त्रास से व्याकुल रहती हैं। अब समय आगया है, आप तुरंत अपने माता-पिता तथा जातिवालों का संकट दूर कीजिये।

श्रीकृष्णजी के कहने से नन्द आदि ने चलने की तैयारी कर दी। अक्रूरजी रात भर कृष्ण-बलराम से बातें करते रहे। दूसरे दिन सबेरे नाना प्रकार की भेंट की सामग्री ले कर नन्दजी गोपों को लेकर मथुरा के लिए चले। अक्रूर कृष्ण-बलराम को रथ पर बैठाल कर चले। यमुना तीर अक्रूर ने रथ रोक दिया। कृष्ण-बलराम को रथ पर छोड़ कर वे स्नान करने यमुना की धार में घुसे। वहाँ उन्होंने रसातल में शेषनागजी का दर्शन किया। शेषजी ने अपनी दिव्य विभूतियों सहित अक्रूरजी को दर्शन दिये। वासुकि, कर्कोटक आदि नागराज तथा देवगण, गंधर्व आदि शेषजी की सेवा करते देख पड़े। अक्रूर ने वहीं शेषजी के वक्षस्थल पर दिव्य रूप धारण किये श्रीकृष्ण तथा बलराम को सुशोभित देखा। यह देख, उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्हों ने जल से सर निकाल कर रथ की ओर देखा। वहाँ कृष्ण-बलराम पूर्ववत् बैठे थे। फिर अक्रूर ने जल में गोता लगा कर शेषजी के दर्शन किये। फिर भी उन्हें कृष्ण-बलराम शेषजी की गोद में आसीन देख पड़े। उन्हें विश्वास हो गया कि कृष्णजी साक्षात विष्णु भगवान का अवतार हैं। बड़ी देर तक दर्शन और पूजन करने के अनन्तर अक्रूर जी रथ पर बैठे कृष्ण-बल-राम के पास लौट आये। उन्हें देख श्रीकृष्णजी ने मुस्करा

कर पूछा कि आपके उत्तेजित भाव से जान पड़ता है कि आपने कुछ आश्चर्य की बात देखी है। अक्रूर जी बोले—'संसार भर के आश्चर्य के पास ही तो मैं उपस्थित हूँ।'

'स्नान के बाद अक्रूरजी ने फिर रथ चलाया। संध्या समय वे मथुरा में जा पहुँचे। अक्रूरजी उन्हें अपने घर ले गये और उनसे कहा कि आप के कारण आपके पिता वसुदेव को कंस के कोप का भाजन होना पड़ता है, इस कारण अभी आप उनसे न मिलें। श्रीकृष्णजी ने कहा कि मैं प्रत्यक्ष में उनसे न मिलूँगा, अभी तो मैं नगर देखने जाता हूँ। अक्रूर भी कंस को कृष्णजी के आने के समाचार देने चले गये।

'इधर श्रीकृष्णजी बलराम तथा गोपों को लेकर नगर को देखने के लिए निकले। रास्ते में उन्हें नाना प्रकार के वस्त्र लिये हुए एक धोबी मिला। बाल-स्वभाव दिखलाते हुए नम्र शब्दों में कृष्णजी ने उस धोबी से कुछ कपड़े माँगे। उसने उन्हें अनेक कटु वचन कहे। तब कृष्णजी ने उसे एक घूँसा मारा। वह वहीं मर कर गिर गया। कृष्ण-बलराम जी ने अपने तथा गोपों के लिए उचित वस्त्र लेकर शेष वहीं छोड़ दिये। आगे उन्हें एक माला बेचने वाला मिला। नम्रता से उन्होंने माली से मालाएँ माँगी। उसने उनके उपयुक्त बहुत-सी उत्तम मालाएँ उन्हें पहना

दीं। श्रीकृष्णजी ने उसे वर दिया तेरे पास बहुत विभूति हो जायगी। आगे बढ़ने पर उन्हें कंस की दासी कुब्जा मिली। उनके कहने पर उसने उन्हें केसर-चन्दन से सराबोर कर दिया। कृष्णजी ने उसकी ठुड्ढी पकड़ कर उसे इस प्रकार खींच दिया कि उसकी कूबड़ गायब हो गई और वह एक सीधी सुन्दरी युवती के रूप में बदल गई। उसने हाव-भाव दिखला कर श्रीकृष्णजी को अपने साथ चलने को कहा। पर वे न गये। उन्होंने उसे हँसते हुए विदा कर दिया। आगे बढ़ने पर उन्हें सामने धनुष-यज्ञ का प्रधान, सुज्जित मण्डप देख पड़ा। वे उसके अन्दर चले गये। वहाँ एक ऊँचे स्थान पर एक बहुत मोटा दिव्य धनुष रक्खा था। वह इतना भारी था कि उसे देव, दानव कोई भी सहसा न उठा सकता था। वहाँ के पहरेदारों से पूछ कर उन्होंने उस धनुष को उठा लिया और बात-की-बात में उसे सहज ही में खींच कर चट से तोड़ डाला। फिर उसके दोनों टुकड़ों को वहीं डाल कर वे सबको साथ लेकर एक ओर चले गये।

'यह घटना देखकर उस यज्ञ-शाला के रक्षक बहुत भयभीत हुए। उन्होंने डरते-डरते जाकर सब हाल कंस से विस्तार पूर्वक बतलाया। कंस को भी बड़ा भय और विस्मय हुआ। वह सोचने लगा कि कृष्ण के आगे मेरा सभी

प्रयत्न विफल होता जा रहा है। यह सोचते-सोचते वह यज्ञशाला में आया। सब सामग्री और स्थानों का निरीक्षण करने के बाद उसने सेवकों को आज्ञा दी कि कल सब तैयारी की जाय, स्थान-स्थान पर कलश रक्खे जायँ, चन्दनवार बांधे जायँ, ध्वजा-पताका लगाई जायँ, सुन्दर वस्त्र बिछाये जायँ और मल्ल-युद्ध के लिए अखाड़ा तैयार किया जाय। इसके अनन्तर उसने चाणूर-मुष्टिक नामक मल्लों को बुला कर आज्ञा दी कि तुम कल मल्ल-युद्ध में कृष्ण-बलराम को मार डालना, मैं तुम्हें खूब इनाम दूँगा। मल्लों को समझा कर विदा करने के बाद उसने महामात्र नामक महावत को बुलाकर कहा कि कल तुम मत्त हाथी कुवलयापीड को सिंहपौर पर रखना, जब कृष्ण-बलराम रंगभूमि में आने लगें तो उन पर हाथी छोड़देना और उससे उन्हें मरवा डालना। उनके नष्ट होने पर मैं तुम्हें खूब इनाम दूँगा। कृष्ण-बलराम के मरने पर मेरे शत्रु वसुदेव तथा यादवगण आप-से-आप नष्ट हो जायँगे। महामात्र के विस्मय प्रकट करने पर कंस बोला—'मैं उग्रसेन का पुत्र नहीं हूँ। मेरा जन्म सौभपति द्रुमलिक नामक दानव-राज से हुआ है। यह रहस्य मुझे देवर्षि नारदजी ने बतलाया था। एक बार मेरी माता ऋतुस्नान के बाद सुयामुन पर्वत पर मनबहलाने के लिए गई थी। नाना प्रकार के

फल-पुष्पों के लदे हुए मनोहर वृक्षों तथा लता-द्रुमों के बीच घूमती हुई वह रति के समान जान पड़ने लगी। उसी काल में दैवयोग से महापराक्रमी, नाना प्रकार की मायाओं तथा अस्त्र-शस्त्रों को जीतने वाला, देवगण के पराक्रम को नष्ट करने वाला, इच्छ-चारी, आकाश-गामी, द्रुमलिक नामक दानव भी मन बहलाने के लिए वहाँ आया। मेरी माता को देखकर उसका मन चंचल हो उठा। यह जान कर कि मेरी माता पतिव्रता है, उसने राजा उग्रसेन का रूप बना लिया और मेरी माता के पास जाकर मनमाना विहार किया। विहार के समय मेरी माता को संदेह हो गया और उसने क्रोध में भर कर पूछा—'तू कौन है? तू ने मेरे सतीत्व को नष्ट क्यों किया?' द्रुमलिक ने अपना पूरा परिचय देकर कहा कि मैंने तुझे ऐसा पुत्र दिया है जिसके आगे तीनो लोकों में कोई न ठहर सकेगा, तू व्यर्थ सतीत्व का सोच न कर, संसार में अनेक पतिव्रता स्त्रियों ने दूसरों से बलशाली पुत्र उत्पन्न किये हैं। किन्तु रानी का क्रोध शान्त न हुआ। वह यह शाप देकर चली आई कि तेरे अंश से जो पुत्र उत्पन्न होगा उसी के हाथ से तेरी मृत्यु होगी। हे महामात्र! इस प्रकार मैं उग्रसेन की रानी में द्रुमलिक नाम के दानव-राज के अंश से उत्पन्न हुआ हूँ। इसी कारण मैंने उग्रसेन को गद्दी से उतार

दिया और अब मैं यदुवंशियों का विनाश कर रहा हूँ।'

अध्याय २९-३३

कुवलयापीड, चाणूर एव कस आदि का वध, उग्रसेन का अभिषेक, सादीपनि से विद्या, गुरु के मृतक पुत्र को लाना

वैशम्पायनजी बोले—'दूसरे दिन सवेरे उत्सव प्रारम्भ हुआ। पुरवासियों से रंगभूमि भर गई। भिन्न-भिन्न श्रेणी के लोगों के बैठने के लिए भिन्न-भिन्न स्थान बने थे। स्त्रियों और वेश्याओं के लिए अलग स्थान सजाये गये थे। मालाओं एवं गुलदस्तों से सभी स्थान महमहा रहे थे। सबके यथा स्थान बैठ जाने पर देवदुर्लभ बहुमूल्य श्वेत वस्त्र-आभूषण से सुशोभित दिव्य छत्र लगाये हुए कंस रंग-भूमि में आया। उसने पहले कुवलयापीड हाथी को मुख्य द्वार पर खड़ा करा दिया, इसके अनन्तर वह सिंहासन पर जा बैठा। इसी समय कृष्ण-बलराम गोपों का भेष बनाये गोपों के साथ रंगभूमि के द्वार पर आये। उसी समय एकाएक महावत ने उनके ऊपर हाथी को दौड़ाकर आक्रमण किया। कृष्ण-बलराम को सूँड़ से पकड़ने और दाँतों तथा पैरों के नीचे दबाकर मारने के लिए हाथी उन पर वायु-वेग से झपटा। किन्तु दोनों भाई बिजली की तरह चमक कर हाथी के पेट के नीचे से निकलकर दूर जा खड़े हुए।

तब महावत ने हाथी को मोड़कर उन पर फिर छोड़ा। कृष्ण-बलदेवजी फिर बचकर निकल गये। बार-बार हाथी उन पर आक्रमण करता और हरबार वे उसके पेट के नीचे से, सूँड़ के बगल से या पैरों के बीच से होते हुए सटक जाते। फिर एक ओर कृष्णजी और दूसरी ओर बलराम हो गये और दोनों सूँड़ और पूंछ पकड़कर कभी आगे और कभी पीछे उस हाथी को खींचने लगे। अन्त में शिथिल होकर वह गिर पड़ा। दोनों भाइयों ने उसके दोनों दाँतों को उखाड़ लिया और उन्हीं दाँतों के प्रहार से हाथी को और महावत को मार डाला।

'कुवलयापीड को मारकर कृष्ण-बलदेव हाथी का एक-एक दाँत लिये हुए रंगभूमि में जा पहुँचे। उस समय की उनकी शोभा निराली ही थी। उन्हें देखकर यदुवंशी बहुत प्रसन्न हुए। किन्तु कंस को बड़ा भय लगा, बहुत क्रोध आया। उसने उनके आते ही चाणूर और मुष्टिक नामक पहलवानों को ललकारा। वे दोनों श्रीकृष्ण-बलराम से युद्ध करने के लिए आगे बढ़े। वे पहलवान पहाड़ के सदृश थे और कृष्ण-बलदेव उनके सामने बच्चे के समान मालूम पड़ रहे थे। उन लोगों की असमानता देखकर दर्शक बहुत खिन्न हुए और आपस मे कुछ बुद-बुदाने लगे, किन्तु कंस के भय से कोई खुलकर कुछ कह न

सका। कंस की आज्ञा से चाणूर कृष्णजी से युद्ध करने लगा और मुष्टिक बलदेवजी से भिड़ा। चाणूर और मुष्टिक ने कृष्ण-बलदेव को मारने के लिए अनेक प्रयत्न किए, किन्तु वे सफल न हो सके। अन्त में कृष्ण-बलराम ने दोनों को पृथ्वी पर पटक कर मार डाला। उनके मरने पर तोषल, अन्ध्र आदि अनेक पहलवान उन्हें मारने के लिए आए, किन्तु दोनों भाइयों ने एक-एक करके उन सब मल्लों को मार डाला। यह देख देवकी, वसुदेव, यादवगण आदि को बड़ी प्रसन्नता हुई। किन्तु कंस क्रोध से जल उठा। उसने गरज कर कहा—'इन दोनों दुष्ट गोपों को यहाँ से निकाल दो और हाथ में हथकड़ी और पैरों में बेड़ियाँ डाल कर इन्हें कैदखाने में बन्द कर दो। दुष्ट वसुदेव तथा अन्य यादवों को कठोर दण्ड दो। गोपों को लूट लो और कैदखाने में बन्द करलो। कृष्ण के सभी साथियों को नष्टकर डालो।' कंस के ये वचन सुनकर कृष्णजी को बड़ा क्रोध आया। वे बिजली की तरह चमक कर कंस के सिंहासन के पास जा पहुँचे। कंस भयभीत होकर उन्हें रोकने की चेष्टा करने लगा। किन्तु श्रीकृष्णजी के सामने उसकी एक न चली। श्रीकृष्णजी ने झपट कर उसके बाल पकड़ लिये और झटका देकर उसे मंच के नीचे गिरा दिया। फिर नीचे आकर वे उसे घसीटने लगे। इस प्रकार

बिना शस्त्र प्रहार के ही कंस के प्राण निकल गये। उसी समय कंस के भाइयों ने कृष्ण-बलराम पर आक्रमण किया। बलरामजी ने युद्ध करते हुए उन सबको मार डाला। इस प्रकार दुष्टों का नाश कर दोनों भाई अपने माता-पिता और गुरुजनों के पास गये और उन्होंने सबको उचित रूप से प्रणाम किया। देवकी और वसुदेव कृष्ण-बलदेव को पाकर प्रेम से गद्गद् हो गये।

कंस के मरने पर उसकी रानियाँ उसके बल, वीर्य, पराक्रम, वैभव आदि का बखान कर जोर-जोर से विलाप करने लगीं। कंस की माता भी बिलख-बिलख कर रोने लगी। फिर उसने उग्रसेन से कहा कि तुम विजयी श्री-कृष्णचन्द्र जी के पास जाकर उनसे अपने पुत्रों की अन्तेष्ठि-क्रिया की आज्ञा प्राप्त कर अग्नि संस्कार आदि का प्रबन्ध करो। इधर कंस के मरने पर कृष्णजी पछताने लगे। उन्होंने स्त्रियों के विलाप से विकल एवं खिन्न होकर कहा—'लड़कपन के कारण मैंने कंस को मारकर सैकड़ों स्त्रियों को विधवा कर डाला। यह अच्छा नहीं हुआ। मुझसे इन सबका दुःख देखा नहीं जाता। किन्तु क्या करूँ ? कंस ने अपने दुष्ट कर्मों से जगत को इतना त्रस्त कर रक्खा था कि उसका मारना ही अनिवार्य हो उठा था। दुष्ट मनुष्य अपने कर्मों से ही नष्ट हो जाते हैं। कंस के मरने से अधर्म

और अनीति का नाश हुआ है।'

'इधर डरते-काँपते व्याकुल उग्रसेन यदुवंशीयों को साथ में लिये हुए श्रीकृष्णजी के पास पहुँचे और हाथ जोड़ कर बोले—'आपने अपने प्रताप से विजय प्राप्त की और यादवों की विपत्ति दूर की। आपका यश और प्रताप संसार भर में फैल जायगा और सभी आपके अधीन होकर रहना स्वीकार करेंगे। आप इस समस्त राज्य, सम्पत्ति, स्त्री-वर्ग, दासी-दास, सेना-सामन्तों आदि को लेकर चक्रवर्ती राज्य कीजिये। मैं कंस आदि का अन्तिम संस्कार कर रानियों सहित वन में चला जाऊँगा। आप न्याय-पूर्वक शासन कर सबको सुख दीजिए।'

उनके वचन सुन कर श्रीकृष्णचन्द्रजी बोले—'मैं तो गौओं और गोपों के बीच वन में रहना अधिक उत्तम समझता हूँ। मुझे राज्य से कोई मतलब नहीं। यह सारा राज्य आपका है। आप सिंहासन पर बैठकर नीति-पूर्वक शासन कीजिए और सबको सुख दीजिए। कंस अपने कुकृत्यों के कारण ही नष्ट हुआ है। अत्याचार अधिक दिन तक नहीं चल सकता। पापों के कारण ही काल ने मुझे निमित्त बनाकर उसकी यह दशा कराई है। आप उसका सोच छोड़कर सिंहासन पर बैठिए और राज्य-लक्ष्मी का उपभोग करते हुए सब को सुखी कीजिए।'

यह कहकर श्रीकृष्णजी ने सब के सामने उग्रसेन को सिंहासन पर बैठाकर उनका राजतिलक किया। सब यदु-वंशी श्रीकृष्णजी के कहने से उनके वशवर्त्ती हो गये। दूसरे दिन महाराज उग्रसेन ने कंस आदि की विधिवत अन्त्येष्ठि-क्रिया की और करोड़ों सोने की मोहरें दान में दीं। इसके अनन्तर उग्रसेन सुखपूर्वक राज्य करने लगे। श्रीकृष्ण-बलराम भी सब के कहने से मथुरा में रहकर सबको सुखी करने लगे।

'कुछ समय बाद दोनों भाई अवन्तिपुरी में जाकर महापंडित सांदीपनि के शिष्य हुए। दोनों ने उनसे विधिपूर्वक वेद, शास्त्र और शस्त्रों को प्राप्त किया। उन्हें केवल चौंसठ दिन में ही सब विद्याएँ प्राप्त हो गईं। अन्त में विदा देते समय गुरु ने गुरु-दक्षिणा के रूप में अपने उस पुत्र को माँगा जो बहुत दिन पहले समुद्र में डूब गया था। श्रीकृष्णजी ने पहले समुद्र के पास जाकर गुरुपुत्र को माँगा। समुद्र ने पूजा करने के बाद अपने यहाँ तलाश की, किन्तु बालक न मिला। तब उसने कहा कि मेरे यहाँ पंचजन्य नामक दैत्य शंख के रूप में रहता है, शायद उसने आपके गुरुपुत्र को खा लिया हो। कृष्णजी ने पंचजन्य को मारा। किन्तु उसके पेट में गुरुपुत्र न मिला। तब वे यम के पास गये और गुरुपुत्र को माँगा। यम ने उनकी पूजा की, किन्तु

गुरुपुत्र के सम्बन्ध में कुछ भी न कहा। विवश हो कृष्णजी ने उनसे घोर संग्राम किया। अन्त में हारकर यम ने उनके गुरुपुत्र को लौटाल दिया। कृष्णजी ने अमूल्य रत्नों के साथ गुरुपुत्र को लाकर गुरु को दे दिया। उन्होंने प्रसन्न होकर बहुत-बहुत आशीर्वाद दिये। वहाँ से विदा होकर दोनों भाई मथुरा लौट आये। उग्रसेन तथा यदुवंशियों ने उनका बड़ी धूमधाम से स्वागत किया। सब को प्रसन्न करते हुए दोनों भाई मथुरा में रहने लगे।'

अध्याय ३४-३६

जरासध की मथुरा पर चढ़ाई और १७ बार हार

वैशम्पायनजो बोले—'अस्ति, प्राप्ति नामक कंस की दो रानियाँ थीं। कंस के मारे जाने पर वे दोनों अपने पिता जरासंध के पास गईं और रो-कलपकर उससे सारा वृत्तान्त कह सुनाया। उनकी प्रेरणा से जरासंध बड़ी भारी सेना तथा चेदिराज शिशुपाल, कारूपपति, दंतवक्र, प्रतापी पौण्ड्र, भीष्मक, वीरवर रुक्मी, अंगराज, बंगाधिपति, काशिराज, विदेहाधिपति, मद्रराज, त्रिगर्तेश्वर, शल्व, यवनपति भगदत्त, सौवीरराज, शैव्य, गांधारराज सुबल, काश्मीरराज, दुर्योधन, आदि महाबलवान राजाओं को लेकर कृष्ण-बलराम तथा यदुवंशियों को नष्ट करने के विचार से मथुरा

पर चढ़ दौड़ा। उस अपार सेना को देख कर मथुरा वासी बहुत विस्मित और भयभीत हुए। कृष्ण-बलराम ने उन्हें अभय देकर धैर्य-बँधाया। इसी बीच में जरासंध ने अपने मुख्य-मुख्य सेना-नायकों से रण-मंत्रणा कर अपनी सेना को कई भागों में बाँट दिया और चारों ओर से मथुरा पर आक्रमण किया। घोर युद्ध होने लगा। दोनों ओर के वीर अद्भुत कर्म करते हुए मर-मर कर गिरने लगे। अन्त में कृष्ण-बलराम पुरी से बाहर निकले। उसी समय दिव्य रथ और सारंग धनुष, कौमोदकी गदा, सौनन्द मूसल और संवर्तक हल नामक अमोघ आयुध उनके पास आये। दोनों भाइयों ने उन आयुधों को लेकर शत्रुओं का संहार करना प्रारम्भ किया। यादव-सेना भी बाहर निकल कर शत्रुओं का नाश करने लगी। उनकी मार न सह सकने के कारण जरासंध के वीर युद्ध से भागने लगे। तब जरासंध ने उन्हें ललकार कर कहा कि युद्ध से भागने में भ्रूण-हत्या का पाप लगता है; तुम लोग डरो मत; मैं अभी शत्रुओं का नाश किये डालता हूँ। यह कह कर उसने भीषण युद्ध करना प्रारम्भ किया। रण-भूमि में रुधिर की नदी बह चली, लाशों से पृथ्वी पट गई, घायलों के आर्तनाद से दिशाएँ कांपने लगी। भीषण दृश्य उपस्थित हो गया। इसी समय बल

राम ने जरासंध से गदायुद्ध मारम्भ किया। किन्तु गदा-युद्ध करने पर वलराम जी को विदित हो गया कि जरासंध इस युद्ध में वड़ा प्रवीण है। उससे गदायुद्ध में पार पाना कठिन जान, वलराम जी ने उसे मारने के लिए मूसल उठाया। उसी समय आकाशवाणी हुई कि हे वलराम जी! आप इस समय इसे न मारिये। इसका मारने वाला तो दूसरा ही उत्पन्न हो चुका है। आकाश वाणी सुन कर वलराम जी ने मूसल रख दिया। कुछ समय वाद जरासंध की सारी सेना नष्ट हो गई। वचे हुए उसके साथी भाग गये। हार कर वह भी अपने देश को लौट गया। कृष्ण, वलराम के साथ यदुवंशी विजय प्राप्त कर पुरी में लौट गये। इस प्रकार वीस-वीस अक्षौहिणी सेना लेकर जरासंध ने सत्तरह वार मथुरा पर आक्रमण किया और हर-वार कृष्ण-वलराम ने यदुवंशियों की सेना लेकर उसका सामना किया, हर-वार उसकी सेना को नष्ट कर उसे जीवित छोड़ दिया।

अध्याय ३७-४०

त्रिकद्रु द्वारा यदुवश वर्णन, कृष्णजी का परशुरामजी स मिलना और गोमत-पर्वत पर जाना

वैशम्पायन जी वोले—'जरासंध ने फिर अठारहवीं वार

चढ़ाई की। मथुरा के किले की दीवालें जगह-जगह पर टूट गई थीं, खाइयाँ बिगड़ गई थीं, अस्त्र-शस्त्रों की कमी पड़ गई थी, यादववीर लड़ते-लड़ते शिथिल हो गए थे। इस बार की चढ़ाई से उन्हें बड़ी आशंका होने लगी। युद्ध-मंत्रणा करते समय राजनीतिविशारद विकद्रु ने सबको सम्बोधन करके कहा—'पूर्व समय में मनु के वंश में इक्ष्वाकु के पुत्र हर्यश्व हुए। उनका विवाह महापराक्रमी मधुदानव की त्रिलोक-सुन्दरी कन्या मधुमती से हुआ। हर्यश्व के बड़े भाई अयोध्यापति ने उन्हें अलग कर दिया। तब मधुमती के कहने से हर्यश्व उसके पिता मधुदानव के नगर में चले गये। दानव ने उनका बड़ा आदर-सत्कार किया और उन्हें अपना समुद्रपर्यन्त अनूप, आनर्त देश दे दिया। हर्यश्व वहाँ सुखपूर्वक राज्य करने लगे। लवणासुर उनकी आज्ञा में रहने लगा। हर्यश्व के यदु नामक महाक्रमी पुत्र हुआ। पुत्र को राज्य देकर हर्यश्व वन में तप करने चले गये। यदु नीति-पूर्वक राज्य करने लगे। एक बार समुद्र में स्नान करते समय सर्पराज धूम्रवर्ण उन्हें खींचकर अपने स्थान को ले गये। वहाँ दिव्य मणियों-रत्नों से जड़े हुए अपने अलौकिक भवन में ले जाकर सर्पराज ने यदु की विधिवत पूजा की और कहा कि आपके द्वारा सोम, कुक्कुर, अंधक, भोज, यादव, दशार्ह, वृष्णि नामक सात वंश चलेंगे।

यह कह नागराज ने अपनी पाँच अनिन्द्य सुन्दरी कन्याओं के साथ उनका विवाह कर दिया। यदु उन पाँचों को अपने महल में ले आये। उनके मुचुकुन्द, पद्मवर्ण, माधव, सारस और हरित नामक पाँच पुत्र उत्पन्न हुए। यदु ने अपने पाँचों पुत्रों का अभिषेक कर उन्हें उनकी इच्छा के अनुसार विभिन्न राज्य दे दिये और फिर उन्होंने तप के लिए वन का रास्ता लिया। मुचुकुन्द ने विन्ध्य पर्वत के बीच के स्थान को बसाकर राज्य स्थापित किया और नर्मदा किनारे माहिष्मती और विन्ध्य तथा ऋक्ष-पर्वतों के बीच में पुरिका नामक रम्य पुरियों का निर्माण किया। पद्मवर्ण ने सह्य-पर्वत के पास पद्मावत देश और करवीरपुरी का निर्माण किया। सारस ने क्रौंचपुर और वनवासी देश बसाया। हरित ने समुद्र के उन द्वीपों का शासन आरम्भ किया, जिनके आस-पास के समुद्र से मल्लाह मोती, मूंगा, शंख तथा अन्य बहुमूल्य रत्न आदि निकालते थे। राजकुमार माधव अपने पिता की गद्दी पर बैठा। इसी वंश में हम सब यदुवंशी उत्पन्न हुए हैं। इस समय जरासंध के प्रबल आक्रमण को हमें एक साथ रोकना चाहिए।' वसुदेवजी ने भी इसका समर्थन किया।

सब बातें सुनकर श्रीकृष्णजी ने कहा—'हम दोनों भाई शत्रु की सेना का संहार करने के लिए पर्याप्त हैं।

किन्तु इस ससय हम दूसरी ही नीति का अवलम्बन करेंगे। हम दोनों जरासंध के सामने से भागेंगे। वह अभिमान के कारण पुरी पर आक्रमण न कर, हमारा पीछा करेगा। इस प्रकार हम पुरी तथा अपने वंशवालों की रक्षा शत्रु से सहज में कर सकेंगे। यथा समय, यथा स्थान हम शत्रु से समझलेंगे। आप लोग हमारे लिए चिन्ता न करें।' सबको समझा कर कृष्ण-बलराम घबराये-से पुरी से निकल कर दक्षिण की ओर भागे। मथुरा से चलकर अनेक देशों को पार करते हुए वे सह्य-पर्वत के पास करवीरपुर के निकट से बहने वाली वेणा नदी के तट पर गये। वहाँ एक वट के नीचे बैठे हुए उन्हें परम तेजस्वी परशुरामजी मिले। दोनों भाइयों ने उन्हें भक्ति-पूर्वक प्रणाम किया और प्रीति पूर्वक उनका गुणानुवाद कर उनकी स्तुति की। फिर अपना परिचय दिया। परशुरामजी ने प्रसन्न होकर कहा—'मैं तुम्हारा सब वृतान्त जानता हूँ। पश्चिम समुद्र के अपने शिष्यों को छोड़कर तुम्हें मंत्र देने के निमित्त ही तो मैं यहाँ आया हूँ। तुम दुष्ट राजाओं को मार कर जल्दी ही भूमिका भार उतारोगे। तुम्हारे पूर्व-पुरुषों के द्वारा निर्मित करवीरपुर में इस समय प्रजा और अपने बंधु-बांधवों को सताने वाला शृगाल नामक दुष्ट राजा राज्य करता है। तुम उसे मार कर प्रजा का कष्ट दूर

करो। हम अभी सह्य-पर्वत से होते हुए सबसे ऊँचे गोमंत-शिखर पर चलेंगे। वहाँ तुम्हें दिव्य अस्त्रों की प्राप्ति होगी और वहीं तुम जरासंध को परास्त करोगे।' यह कह कर परशुराम जी ने उन्हें अपने कमण्डलु से दिव्य दूध पिला कर शक्ति-सम्पन्न किया। फिर उनको लेकर अनेक वन, पर्वत लाँघते हुए परशुरामजी तीन दिन बाद गोमंत शिखर पर जा पहुँचे। वहाँ पहुँच, कृष्ण-बलराम जी को विजय का आशीर्वाद दे परशुरामजी उनसे विदा होकर अपने स्थान शूर्पारक क्षेत्र को चले गये।

अध्याय ४१—४६

गोमंत के पास जरासंध का जाना, पर्वत को जलाना, कृष्ण द्वारा हारना, शृगाल-वध, मथुरा को लौटना, यमुना-कर्षण

वैशम्पायनजी बोले—'परशुरामजी के चले जाने पर कृष्ण-बलराम जी इच्छा-पूर्वक गोमंत शिखर पर घूमने लगे। कुछ समय बीतने पर बलरामजी को कदम्ब के पेड़ के कोटर में भरी हुई वारुणी मिली। (कदम्ब के कोटर में जो जल एकत्र हो जाता था वह वारुणी बन जाता था।) बलरामजी ने उसका सेवन किया। उनसे मदमस्त होने पर उन्हें वरुण की कन्या वारुणी देवी, चन्द्र की कन्या कान्ति और श्रीदेवी प्राप्त हुईं और तीनों

ने दिव्य वस्त्रा-भूषणों से उन्हें सजा दिया। इसी बीच में गरुड़ जी ने विष्णु के दिव्य मुकुट को लाकर कृष्णजी को पहना दिया। विरोचन ने उस मुकुट का हरणकर लिया था। गरुड़जी भीषण युद्ध कर उस मुकुट को लाये थे। मुकुट पाकर श्रीकृष्णजी बहुत प्रसन्न हुए। इसी बीच में श्रीकृष्णजी को खोजता हुआ जरासंध सेना सहित वहाँ आ गया। उसने चारों ओर से पर्वत को घेर कर कृष्ण-बलराम को मारना चाहा। पर पर्वत पर सेना की एक न चली। तब शिशुपाल की सलाह से उसने चारों ओर से उसमें आग लगवा दी। आग की लपटों से वृक्ष, लता, पशु, पक्षी, नाग आदि भस्म होने लगे। पर्वत शिखर टूट-टूट कर गिरने लगे। आकाश धुँए तथा गंध से भर गया। पर्वत को भस्म होते देख बलरामजी नीचे कूद पड़े। कृष्णजी भी कूदे। किन्तु कूदने के पहले उन्होंने पर्वत को ऐसा दबाया कि नीचे से जल निकलने लगा, जिससे अग्नि बुझ गई। दोनों भाइयों को सामने देख जरा-संध ने उन पर आक्रमण किया। किन्तु भीषण युद्ध के अनन्तर दोनों भाइयों ने सारी सेना को नष्ट कर डाला, दुरद को मार डाला और जरासंध को भगा दिया।

'विजय प्राप्त होते ही चेदिराज दमघोष ने उनसे कहा कि मैं तुम्हारा फूफा हूँ। मैंने दुष्ट जरासंध का साथ

छोड़ दिया है। तुम मेरे साथ करवीरपुर को चलो। कृष्ण-बलराम रथों पर बैठकर करवीरपुर गये। वहाँ के राजा भृगाल ने नगर से निकलकर उन पर आक्रमण किया। उसने कहा कि मेरा भी नाम वासुदेव है और तुम्हारा भी, हमें लड़कर यह तय कर लेना चाहिए कि संसार में कौन वासुदेव रहे। भीषण युद्ध के अनन्तर कृष्णजी ने भृगाल को मार डाला। उसकी रानी विलाप करती हुई पुत्र को लेकर कृष्णजी की शरण में आई। कृष्णजी ने उसे अभय-दान देकर उसके पुत्र को गद्दी पर बैठाल दिया। फिर वे दमघोष के नगर को गये। वहाँ से दोनों भाई मथुरापुरी में लौट आये। नगर वासियों ने बड़े समारोह से उनका स्वागत किया।

'मथुरा रहते समय वृन्दावन वासियों की प्रीति का स्मरण कर बलरामजी वहाँ गये। नन्द, यशोदा, गोपी, गोपों ने उनका बड़ा आदर-सत्कार किया। वहाँ विहार करते समय एक बार हलधरजी ने यमुना को बुलाया, पर वह न आई। तब उन्होंने कोप कर उसे हल से अपनी ओर खींचा। व्याकुल होकर यमुना चली आई। उसने दीन वचन कहकर उनसे क्षमा माँगी। उसे क्षमा कर तथा गोपी-गोपों से विदा होकर बलरामजी मथुरा को लौट आये।

अध्याय ४७-५८

कृष्णजी का रुक्मिणी के स्वयंवर मे जाना और राजाओ की मंत्रणा के बाद राजेन्द्र पद पर अभिषिक्त होना, काल-यवन का आना और मुचुकुन्द द्वारा भस्म होना, द्वारका का निर्माण तथा यदुवंशियों का वहाँ जाकर बसना।

वैशम्पायनजी बोले—'मथुरा में वास करते समय दूतों से पता चला कि कुण्डिनपुर में राजा भीष्मक की त्रैलोक्य-सुन्दरी कन्या का स्वयंवर है। वहाँ सभी छोटे-बड़े राजा जा रहे हैं। वहाँ न जाना अपमान की बात समझकर श्रीकृष्णजी चतुरंगिनी सेना के साथ कुंडिनपुर को गये। महाराज उग्रसेन को समझाकर उन्होंने मथुरा की रक्षा का प्रबन्ध कर दिया। रास्ते में गरुड़जी को स्मरण कर कृष्णजी ने उन्हें अपने साथ ले लिया। गरुड़जी के वेगपूर्वक आगमन से अनेक वीर राजा अचेत होकर गिर पड़े। इस प्रकार गरुड़जी के साथ कृष्णजी विदर्भ-नगर जा पहुँचे। उनका आगमन सुनकर शिशुपाल, जरा-संध आदि बहुत चिन्तित हुए। विदर्भ नरेश राजा कौशिक ने कृष्णजी की विधिपूर्वक पूजा करके उन्हें अपने महलों में वास दिया।

'इधर जरासंध ने सब राजाओं को एकत्र कर मंत्रणा करना प्रारम्भ किया। उसने अपने युद्ध तथा कंस, केशी

आदि के वध का वर्णन कर कहा कि कृष्ण अलौकिक पुरुष हैं। मैंने सुना है कि वे विष्णु का अवतार हैं। उन्हीं ने वराह, नृसिंह, वामन, राम, परशुराम आदि के रूप में प्रकट होकर अद्भुत कर्म किये थे। गरुड़ सहित उनका इस अवसर पर यहाँ आना शंका उत्पन्न करता है। राजा सुनीथ ने जरासंध के वचनों का समर्थन करते हुए कहा कि कृष्णजी के सामने हम सब क्षणभर भी नहीं टिक सकते। उनका सत्कार करना ही उचित है। करूष देशाधिपति दन्तवक्र ने सब बातों का समर्थन तथा कंस, प्रलम्ब, चाणूर आदि के विनाश का सविस्तर वर्णन करते हुए कहा कि मेरी समझ में तो यहाँ कृष्णजी प्रेम-प्रीति का सम्बन्ध स्थापित करने के निमित्त ही आये हैं, इस कारण हमें इनका विधिवत सत्कार करना चाहिए, इसी में कल्याण है। शाल्व ने भगवान के अनेक अवतारों की घटनाओं का वर्णन करते हुए कहा कि हम क्षत्रिय हैं, हमें भय के कारण कादर न होना चाहिए और न शस्त्र ही डाल देना उचित है, कृष्ण विष्णु का अवतार हैं, इनके हाथों मरने से मुक्ति ही मिलेगी, किन्तु यहाँ ये युद्ध के निमित्त नहीं आये है, अस्तु यहाँ इन का सत्कार ही होना चाहिए। राजा भीष्मक ने कृष्णजी के पूर्व-जन्म की तथा बालकपन की कथाओं का वर्णन करते

हुए कहा कि जैसा पराक्रम उन्हों ने जरासंध के साथ युद्ध में दिखलाया था वैसा शौर्य तो मैंने किसी और के द्वारा होता नहीं देखा। किन्तु मेरा अभिमानी पुत्र रुक्मी उनसे वैर-विरोध मानता है, वह उनसे युद्ध करना चाहता है। मैं पुत्र के भय से उन्हें कन्या दे नहीं सकता। किन्तु कृष्ण से विरोध करना अच्छा नहीं है। रात भर मंत्रणा के बाद अन्त में सबने निश्चित किया कि संधि करली जाय और श्रीकृष्णजी का उचित रूप से सत्कार किया जाय। दूसरे दिन सबेरे इस निर्णय की घोषणा करदी गई। राजागण अपनी-अपनी सेना सहित तीन दलों में बँट गये। कोई-कोई तो प्रसन्न हुए, कोई-कोई विरोध करने लगे और कुछ तटस्थ हो गये।

'इधर श्रीकृष्णजी के आगमन से विदर्भ देश के राजा कैशिक और उनके भाई क्रथ को बड़ा आनन्द और साथ ही क्षोभ भी हुआ। उन्होंने सोचा कि भगवान श्रीकृष्णजी का अपमान राजाओं के बीच में न होने पाये इसका उपाय करना चाहिए। राजालोग अभिमान के साथ सिंहासनों पर बैठेंगे, उस सभा में कृष्णजी कैसे नीचे बैठेंगे? यह सोचकर उन्होंने अपना राज्य कृष्णजी को देने का विचार पक्का कर लिया। इसी अवसर पर आकाश-वाणी द्वारा इन्द्र ने घोषित किया कि भगवान कृष्ण के बैठने के लिए

स्वर्ग से एक दिव्य सिंहासन और उनके अभिषेक के निमित्त स्वर्ण-कलश प्राप्त होंगे, और जो राजा उनके अभिषेक में सम्मिलित न होंगे उन्हें स्वयं इन्द्र दण्ड देंगे। कैशिक ने इन सब बातों की घोषणा राजागण के बीच में करा दी। तब तो जरासंध, रुक्मि, सुनीथ, शाल्व वहीं रंगभूमि में रह गये, शेष सब राजा अभिषेक में भाग लेने के लिए तैयार हो गये। यथा समय क्रथकैशिक ने सब राजाओं, यदुवंशियों, देवों आदि के बीच में विधिपूर्वक कृष्णजी का राजेन्द्रपद पर अभिषेक किया और सबके लिए उनसे क्षमा चाही। कृष्णजी ने कहा कि मेरे मन में किसी के प्रति वैर भाव नहीं है। क्षात्रकर्म के कारण मेरे हाथ से जिनकी मृत्यु हुई है वे सब स्वर्ग को गये हैं। जो बीत गया उसके लिए सोच करना व्यर्थ है। मैं तो सभी के कल्याण के निमित्त यहाँ आया हूँ।

भीष्मक ने अपने पुत्र के विरोध की बात बतलाकर कृष्णजी से क्षमा चाही। कृष्णजी ने कहा—'आपने मेरा स्वागत-सत्कार नहीं किया, किन्तु मैंने इसलिए बुरा नहीं माना कि कहीं कन्यादान में विघ्न न पड़े। अब आप खुशी से कन्यादान कीजिए। ब्रह्माजी तथा देवगण के प्रार्थना करने पर लक्ष्मीजी ने पृथ्वी पर रुक्मिणी के रूप में अवतार लिया है। उसे अनुरूप वर को प्रदान कर पुण्य के भागी

बनें। आपके पुत्र का विचार है कि मेरे रहने से कन्यादान में विघ्न पड़ेगा, इस कारण मैं यहाँ से चला जा रहा हूँ। मैं तो यहाँ शान्त भाव से आया था, इसी कारण मेरे साथ मेरे जाति वाले श्रेष्ठ यादव, भोज, अंधक आदि हैं। मैं जहाँ विग्रह के लिए जाता हूँ, वहाँ अकेला अपने दिव्य अस्त्र-शस्त्रों को लेकर जाता हूँ।' यह कह तथा भीष्मक आदि की स्तुति से प्रसन्न हो वे वहाँ से चले गये। उनके चले जाने पर भीष्मक ने अपने पुत्र के विरोध का विचार कर स्वयंवर के लिए आये हुए सभी राजाओं को विनीत वचनों द्वारा आदर सहित विदा कर दिया। रुक्मिणी ने सब के सामने प्रतिज्ञा की कि मैं यदि विवाह करूँगी तो राजेन्द्र श्रीकृष्णजी के साथ ही।

'इधर सब राजाओं ने मिलकर सलाह की कि कृष्ण केवल कालयवन से हार सकते हैं। गर्गजी ने शिवजी की बारह वर्ष आराधना कर वह वर प्राप्त किया था कि उन का पुत्र (कालयवन) मथुरा के राजाओं से न जीता जा सकेगा। यह विचार कर सब ने जरासंध से कहा कि आप हमारे अधिपति हैं, कृष्ण को हराने के लिए आप कालयवन की सहायता लीजिए। पहले तो जरासंध दूसरे के आश्रित हो युद्ध करने के लिए तैयार न हुआ। किन्तु अन्त में सब के कहने से उसने सौभपति शाल्व को

आकाश-मार्ग से कालयवन के पास भेजा। शाल्व यवन-पति के पास गया। यवनपति ने अर्घ्य देकर उसका उचित सत्कार किया और राजाओं के अधिपति जरासंध का संदेश सुनकर उनकी सहायता के निमित चलने की तैयारी कर दी। यथा समय ब्राह्मणों को धन से संतुष्ट कर उसने मथुरा के लिए प्रयाण किया।

'इधर श्रीकृष्णाजी कुण्डिनपुर से मथुरा के लिए चले। रास्ते में गरुड़जी विरोधी राजाओं की मंत्रणा की कल्पना कर यदुवंश के हित-साधन के निमित्त कृष्णजी से आज्ञा लेकर पश्चिम दिशा की ओर चले गये। श्रीकृष्णजी मथुरा में आये। राजा उग्रसेन ने आगे आकर उनका स्वागत किया। कृष्णजी के राजेन्द्र पद पर अभिषिक्त होने के कारण सब ने बड़ा उत्सव मनाया। देवराज इन्द्र ने सभी मथुरा वासियों को दिव्य पदार्थ और सुवर्ण की करोड़ों दीनारें भेजीं। कंस की माता ने कंस के लाये हुए असंख्य धन-रत्न को श्रीकृष्णजी के चरणों पर अर्पित कर दिया। कृष्णजी ने उसे राजा उग्रसेन को दे दिया और कहा कि आप इससे विधिपूर्वक अनेक यज्ञ कीजिए और मुझे अपना सेवक मानकर सुख से राज्य कीजिए। सब को सुखी कर वे अपने माता-पिता के स्थान पर चले गये। कुछ समय बाद वहाँ गरुड़जी आये। श्रीकृष्ण-बल-

राम उनसे एकान्त में सलाह करने लगे। गरुड़जी ने बतलाया कि जरासंध असंख्य सेना लेकर आक्रमण करने ही वाला है और उसी के कहने से महाबली, मथुरावासियों से अबाध्य यवनपति कालयवन भी करोड़ों यवनों, खशों, दरदों, हूणों, म्लेच्छों को लेकर मथुरा पर आक्रमण करने के लिए आ रहा है। उन दोनों से पार पाना यदुवंशियों के लिए सरल नहीं है। इसी कारण मैंने यदुवंशियों के कल्याण के निमित्त समुद्र के तीर द्वारावती नामक पुरी को खोज निकाला है। वहाँ सब को सब तरह की सुविधा होगी, सभी सुखी रहेंगे। यदुवंशियों से सलाह कर श्रीकृष्णजी सेना, वाहन सहित सब को लेकर द्वारावतीपुरी को गये और वहाँ जाकर यथास्थान सबको बसा दिया।

'पूर्व समय में कालयवन के पास श्रीकृष्णजी ने घड़े में भरकर एक महा विषैला सर्प भेजा था। आशय यह था कि मैं तुम्हारे ऐसे लोगों के लिए काल-सर्प सदृश हूँ। कालयवन ने उस घड़े में तीक्ष्ण स्वभाव वाली चींटियाँ भरवादीं। चींटियों ने सर्प को खा डाला। यह देख कृष्णजी ने यदुवंशियों को ले जाकर द्वारावतीपुरी में बसा दिया। फिर वे अकेले मथुरा में आये। इसी बीच में कालयवन अपनी प्रबल सेना को ले आया और उसने मथुरा पर घेरा डाल दिया। श्रीकृष्णजी अकेले पैदल पुरी से निकले

और एक ओर को भाग चले। कालयवन उनके पीछे-पीछे शस्त्र लेकर दौड़ा। वे भागते-भागते एक कंदरा में घुस गये। कालयवन भी उनके पीछे-पीछे गया। वहाँ राजा मुचुकुन्द त्रेता युग से पड़े सो रहे थे। कालयवन ने उन्हें श्रीकृष्ण समझ, लातें मार कर जगा दिया। उनकी दृष्टि पड़ते ही वह जल कर भस्म हो गया। तब कृष्णजी प्रकट हुए और मुचुकुन्द को सारा हाल बतला कर मुक्ति का वर दे प्रसन्न कर दिया। मुचुकुन्द उनसे विदा होकर पर्वत पर तप करने चले गये। उन्होंने देवासुर-संग्राम में भाग लिया था और देवों के हित के लिए असुरों का संहार किया था। बहुत थक जाने के कारण वे सोना चाहते थे। तब देवगण ने उन्हें इस गुफा में सुला कर वर दिया था कि जो तुम्हें जगायगा वह तुम्हारी दृष्टि के सामने पड़ते ही भस्म हो जायगा। इसी से कृष्णजी ने कालयवन को उनकी दृष्टि के सामने करके भस्म करा दिया। फिर कालयवन की सेना, वाहन, धन आदि को ले जाकर उन्होंने उग्रसेन को दे दिया। सब यदुवंशी सुखी हो गये। श्रीकृष्णजी के कहने से विश्व-कर्मा ने इन्द्र की राजधानी अमरावती की तरह नाना प्रकार के महलों, बागीचों, विहारों, सभाओं आदि से द्वारका को सुशोभित कर दिया। ऋद्धि, सिद्धि, निधि आदि ने आकर

सबको धन-धान्य से परिपूर्ण कर दिया। इस प्रकार द्वारावती इंद्रपुरी से अधिक वैभव-शालिनी हो गई। श्रीकृष्ण जी की आज्ञा से पवनदेव ने इंद्र को सूचित कर स्वर्ग से लाकर सुधर्मा-सभा को द्वारका में स्थापित कर दिया। उसी में बैठकर भगवान न्याय और शासन करने लगे। उन्होंने प्रजा में श्रेणी विभाजन कर बलाध्यक्ष आदि की नियुक्ति की। सबके ऊपर उग्रसेन को राजा; साँदीपिन को कुलाचार्य; अनाधृष्ट को सेनापति; विकद्रु को मंत्री; उद्धव, वसुदेव, कंक, विपृथु, श्वफल्क, चित्रक, गद, सत्यक, पृथु, बलराम को मंत्रदाता; सात्यकि को प्रमुख योद्धा; अतिरथ दारुक को सारथि बनाया और विभिन्न कार्यों के निमित्त भिन्न-भिन्न योग्य मनुष्यों को नियुक्ति की। सब काम सुचारु-रूप से, व्यवस्थापूर्वक होने लगे। श्रीकृष्ण की अनुमति लेकर बलराम जी ने सती रेवती से विवाह किया।

अध्याय ५६–६२

रुक्मिणी-हरण, रुक्मि-वध, बलराम का पराक्रम-माहात्म्य

वैशम्पायनजी बोले—'जरासंध ने श्रीकृष्णजी तथा यदुवंशियों का अपमान करने के विचार से जोर देकर शिशुपाल के लिए रुक्मिणी को मांगा। रुक्मिणी के भाई रुक्मि ने

परशुरामजी से तथा अन्य महारथियों से अनेक अमोघ अस्त्र-शस्त्र प्राप्त किये थे। वह किसी को भी अपने समान वीर नहीं मानता था। वह श्रीकृष्णजी से द्वेष करता था। उसने अपने पिता भीष्मक को विवश कर शिशुपाल से रुक्मिणी का विवाह पक्का करा दिया। जरासंध सब राजाओं को लेकर शिशुपाल की बारात में गया। फूफी की प्रसन्नता के लिए कृष्ण-बलराम भी सेनासहित कुण्डिनपुर गये। वहाँ बड़ा समारोह था। विवाह के एक दिन पूर्व रुक्मिणी कुल-प्रथा के अनुसार नगर के बाहर मंदिर में इंद्राणी देवी की पूजा करने गईं। जरासंध ने रक्षा के लिए साथ में बहुत सी सेना कर दी। रुक्मिणी की शोभा रति और लक्ष्मी से भी बढ़कर थी। उस छवि पर मोहित हो कर तथा रुक्मिणी की प्रतिज्ञा को पूरा करने के विचार से भी श्रीकृष्ण ने सब के देखते-देखते रुक्मिणी का हाथ पकड़ कर उसे अपने रथ पर बैठाल लिया और वे द्वारका की ओर चल पड़े। रुक्मिणी का हरण सुन कर जरासंध सब राजाओं तथा सेना को लेकर दौड़ पड़ा। पर उसे बलरामजी ने बीच में ही रोक लिया। घमासान युद्ध के बाद बलरामजी ने सब को हरा कर भगा दिया। इधर रुक्मि को जब रुक्मिणी-हरण का पता चला तो क्रोध से पागल हो कर उसने प्रतिज्ञा की कि कृष्ण को मारे और रुक्मिणी को

लौटाले बिना मैं कुण्डिनपुर में न आऊँगा। उसने बड़ी सेना लेकर दूसरे मार्ग से बढ़कर श्रीकृष्णजी को जा घेरा। घोर युद्ध के बाद वह घायल हो कर गिर पड़ा। उसके साथी राजा तथा वीरगण हार कह भाग गये। अपने भाई के प्राणों को संकट में देख रुक्मिणी श्रीकृष्णजी के पैरों पर गिर पड़ीं। कृष्णजी ने उनके भाई को अभय देकर छोड़ दिया और रुक्मिणी को लेकर वे द्वारका को चले गये। इधर जरासध आदि को परास्त कर बलरामजो भी यदुवंशियों सहित द्वारका को लौट आये। शुभ मुहूर्त में रुक्मिणी का विवाह श्रीकृष्णजी के साथ हो गया। रुक्मि पराजित हो जाने के कारण कुण्डिन पुर में लौट कर नहीं गया। उसने दूसरे स्थान पर भोजकट नामक नगर बसाया और वह वहीं अलग राज्य करने लगा। श्रीकृष्णजी के रुक्मिणी, कालिन्दी, मित्रविन्दा, नाग्नजिती, जाम्बवती, श्रुतकीर्ति, माद्री, सत्यभामा, लक्ष्मणा, शैव्या नामक आठ पटरानियां एवं सोलह हज़ार रानियाँ थीं। सब के एक-एक कन्या और दस-दस पुत्र हुए।

'रुक्मिणी से प्रद्युम्न, शुषेण आदि दस महारथी पुत्र हुए। कुछ समय बाद राजा रुक्मि ने अपनी कन्या शुभांगी का स्वयंवर किया। नाना देश के राजा स्वयंवर में गये। महाबली प्रद्युम्न भी स्वयंवर में सम्मलित हुए।

राजकुमारी ने उनके रूप, पराक्रम और गुणों को देख कर उन्हीं के गले में जयमाला डाल दी। रुक्मि ने यदुवंशियों का विरोधी होते हुए भी राजकुमारी का विवाह प्रद्युम्न के साथ कर दिया। प्रद्युम्न के अनिरुद्ध नामक महापराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुआ। कुछ समय बाद रुक्मि की पोती विवाह करने योग्य हुई। अनिरुद्ध ने उसे प्राप्त करना चाहा। रुक्मि ने वर और कन्या की इच्छा जानकर श्रीकृष्णजी के पास विवाह का सन्देश भेजा। बलदेव, रुक्मिणी तथा प्रमुख यदुवंशियों को लेकर कृष्ण जी भोजकट गए। रुक्मि ने उनका बड़ा सत्कार किया और यथा समय अपनी पोती का विवाह अनिरुद्ध के साथ कर दिया एवं दहेज में कड़ोरों की संपत्ति दी। विवाह के अनन्तर दक्खिन के कुछ राजाओं ने रुक्मि से आकर कहा कि तुम पाँसे खेलने के लिए बलदेवजी को बुलाओ। वे पाँसे खेलने के बडे शौकीन हैं, किन्तु खेल में निपुण नहीं हैं, हम लोग उन्हें खेल में हरायेंगे और उनका परिहास करेंगे। सबके कहने में पड़कर रुक्मि ने बलरामजी को पाँसे खेलने के लिए निमंत्रण दिया। उन्हें तो इसका व्यसन था ही, वे तुरन्त चले आये। खेल जम गया। राजागण यथा स्थान बैठे। बलरामजी ने अनेक बार बड़े-बडे दाँव लगाये किन्तु रुक्मि ने कौशल से हर-बार

बाजी जीत ली। अनाड़ी, असभ्य, गोप कहकर राजालोग बलरामजी की हँसी उड़ाने लगे। इसी बीच में बलरामजी ने एक बड़ा भारी दाँव लगाया। इस बार जीत उन्हीं की हुई। किन्तु रुक्मि और अन्य राजा अपनी जीत बता कर बलरामजी को दुर्वचन कहने लगे। झगड़ा बढ़ गया। बलरामजी ने लातों से मसल कर रुक्मि को मार डाला और वहाँ उपस्थित राजाओं में से किसी के दाँत तोड़ डाले, किसी की भुजाएँ उखाड़ डाली, किसी की जंघाओं को भंग कर दिया। इस प्रकार सबको परिहास का मजा चखा कर वे जनवासे में आये। रुक्मिणीजी को अपने भाई की मृत्यु से बड़ा शोक हुआ। श्रीकृष्णजी रुक्मि के लड़के को गद्दी पर बैठाल कर यदुवंशियों के साथ द्वारका को लौट आये। जाम्बवती के पुत्र साम्ब ने कुछ समय बाद हस्तिनापुर में जाकर राजा दुर्योधन की कन्या का स्वयंवर से हरण किया। कौरवों ने इसमें अपना अपमान समझ कर साम्ब को पकड़ कर कैद कर लिया। यह सुनकर यदुवंशियों को बड़ा क्रोध आया। तब बलरामजी कौरवों को समझाने के लिए हस्तिनापुर गये। किन्तु कौरवों ने उनका कहना न माना। तब उन्होंने कोप कर अपने आयुध द्वारा हस्तिनापुर को उलट देना चाहा। यह देख कौरवों ने उनकी शरण में आकर क्षमा चाही। बल-

रामजी ने अपने हल को खींच लिया। दुर्योधन ने साम्ब के साथ अपनी कन्या का विवाह कर दिया और सबको आदर के साथ विदा किया।

अध्याय ६३

भौमासुर (नरक) वध

वैशम्पायनजी बोले—'रुक्मिणी से विवाह करने के अनन्तर श्रीकृष्णजी ने द्वारका को संसार के धन-रत्नों से परिपूर्ण कर दिया। नाना प्रकार के रत्नों को दैत्यों ने देवगण तथा राजा-महाराजाओं से छीन कर अपने यहाँ एकत्र किया था। श्रीकृष्णजी ने उन सबका वध कर उन सभी अपूर्व रत्नों को लाकर द्वारका में प्रतिष्ठित किया।

'एक बार श्रीकृष्णजी यदुवंशियों तथा उग्रसेन के साथ अपनी सभा में बैठे थे। उसी समय देवगण तथा महर्षियों-देवर्षियों के साथ इन्द्र उस सभा में आये। श्रीकृष्णजी ने सबके साथ उठकर उनका स्वागत किया। फिर सबके यथा स्थान बैठ जाने पर कृष्णजी ने इन्द्र से आने का कारण पूछा। इन्द्र ने कहा—'इस समय भौमासुर (नरकासुर) सब देवगण तथा ऋषि-मुनियों को बहुत सता रहा है और धर्म में बाधा दे रहा है। आप शीघ्र उसका वध कर

देवगण की तथा धर्म की रक्षा कीजिए। घोर तपकर उसने ब्रह्माजी से वरदान प्राप्त किये हैं, इस कारण उसे कोई जीत नहीं सकता। वह पृथ्वी का पुत्र है और पृथ्वी के कहने से ही उसकी मृत्यु हो सकती है। आपकी पट-रानी सत्यभामा पृथ्वी का अवतार हैं। आप युद्ध में इनकी सहायता से भौमासुर को मार कर सब की रक्षा कीजिए।' यह कहकर तथा अनेक प्रकार से श्रीकृष्णजी की स्तुति करके इन्द्र देवलोक को चले गये।

श्रीकृष्णजी गरुड़ पर सवार होकर सत्यभामा सहित भौमासुर के नगर प्राग्ज्योतिषपुर गये। भौमासुर तथा उसके सेनापति मुर ने अनेक प्रकार की किले-बन्दी कर रक्खी थी। श्रीकृष्णजी ने मुर तथा अन्य दानवों को मार कर वहाँ की सब किले-बन्दी तोड़ दी। यह देख भौमासुर ने भीषण वेग से उनके ऊपर आक्रमण किया। भीषण युद्ध के अनन्तर कृष्णजी ने अपने चक्र से उसका सर काट डाला। उसके मरने पर उसकी माता पृथ्वी बहुत विलाप करने लगी। कृष्णजी ने उसे समझाकर शान्त किया और भौमासुर के पुत्र को गद्दी पर बैठाल दिया। भौमासुर ने अदिति के कुण्डल, वरुण का हिरण्यवर्षी छत्र, कुबेर की निधियाँ तथा देव, गन्धर्व आदि के नाना प्रकार के रत्न और नाना प्रकार के दिव्य पदार्थ अपने यहाँ

एकत्र किये थे। पृथ्वी ने उन सब को लाकर श्रीकृष्णजी को अर्पित किया। भौमासुर ने संसार भर से छाँट-छाँट कर अपूर्व सुन्दरी सोलह हजार कन्याओं को अपने यहाँ कैद कर रक्खा था। उसके मरने पर श्रीकृष्णजी ने उन सब कुमारी कन्याओं को कैद से छुड़ा दिया। उन सब ने पति रूप में श्रीकृष्णजी को वरण किया। श्रीकृष्णजी ने धन, रत्नों के साथ पालकी में चढ़ा कर उन सबको द्वारका भेज दिया। फिर गरुड़ पर चढ़ कर वे देवलोक में गए। इन्द्र सहित देवगण ने उनका बड़ा आदर-सत्कार किया। उन्होंने अदिति को कुण्डल और वरुण को छत्र लौटा दिए। फिर पारिजात को लेकर वे द्वारका को लौट गये।

अध्याय ६४–७६

रुक्मिणी को कल्पवृक्ष का पुष्प प्राप्त होना, सत्यभामा का कोप, कृष्ण का कल्पवृक्ष को माँगना, इन्द्र का इनकार करना, कृष्ण-इन्द्र युद्ध, द्वारका में कल्पवृक्ष का लाया जाना

वैशम्पायन जी बोले–'एक बार नारदजी देवलोक से द्वारका में आये। श्रीकृष्णजी ने रुक्मिणी सहित उनकी भक्ति-भाव से पूजा की। नारदजी ने श्रीकृष्णजी को पारिजात का एक फूल दिया। श्रीकृष्णजी ने उस फूल को लेकर रुक्मिणी को दे दिया। यह देख नारदजी ने रुक्मिणी से

कहा—यथार्थ में आठ पटरानियों और सोलह हजार रानियों में तुम सबसे श्रेष्ठ हो। तभी तो श्रीकृष्णजी ने तुम्हें इस दिव्य पुष्प को दिया है। इस पुष्प से सब मनोरथ पूर्ण होते हैं; सब सुख-सौभाग्य प्राप्त होते हैं; रोग-शोक-जरा-मरण-व्याधि-दुःख-दैन्य आदि सभी दूर होते हैं। तुम श्रीकृष्णजी की सबसे अधिक स्नेह-पात्री हो। तुम्हारे सुख-सौभाग्य की बराबरी कोई नहीं कर सकता।'

'यह कहकर नारदजी देवलोक को चले गये। उस अवसर पर सत्यभामा की दासियाँ रुक्मिणीजी के महलों में थीं। उन्होंने जाकर सब बातें सत्यभामा से बढ़ा चढ़ा कर बतलाईं। सत्यभामा ने वस्त्राभूषन उतार, मैला वस्त्र पहन, कोप भवन में प्रवेश किया। यह सुन श्रीकृष्णजी ने जाकर उसे मनाना आरंभ किया। किन्तु वह यही कहती रही कि आप मुझसे छल करते हैं, रुक्मिणी को अधिक प्यार करते हैं, अपमानित होकर जीवित रहना मेरे लिए असह्य है, या तो मैं तप करने चली जाऊँगी या प्राण दे दूँगी; मुझसे अपमान नहीं सहा जाता। बहुत समझाने पर भी जब वह न मानी तब श्रीकृष्णजी ने उससे कहा कि मैं तुम्हारे आँगन में कल्पवृक्ष को ही लाकर लगा दूँगा। उनकी इस बात से सत्यभामा प्रसन्न हो गई। उसने मान छोड़ दिया। श्रीकृष्णजी ने नारदजी का स्मरण किया।

वे तुरन्त प्रगट हो गये। श्रीकृष्णजी ने उनसे सब हाल कहा। नारदजी ने बतलाया कि अदिति के तप और सेवा से प्रसन्न होकर कश्यपजी ने अपने तपोबल से पारिजात को प्रकट किया था। इसके पुष्प से सब प्रकार के सुख, सौख्य, सम्पत्ति, सुगन्धियाँ, सिद्धियाँ, मनोकामनाएँ प्राप्त होती हैं। अदिति ने इसी वृक्ष में बाँधकर कश्यप को दानकर अक्षय सौभाग्य प्राप्त किया था। इसी प्रकार इन्द्राणी ने इन्द्र को, रोहिणी ने चन्द्रमा को, रिद्धि ने कुबेर को इसी वृक्ष में बाँधकर दान किया था।

'श्रीकृष्णजी ने नारद से कहा कि आप देवलोक में जाकर इन्द्र से कहिए कि आपके छोटे भाई की स्त्री सत्यभामा इस वृक्ष में बाँध कर अपने पति को दान करना चाहती हैं, इस कारण इस वृक्ष को आप द्वारका में भेज दीजिए। नारद ने कहा—'किन्तु इन्द्र उस वृक्ष को किसी को नहीं देते; क्यों कि इन्द्राणी उसी के नीचे विहार करती हैं। पूर्व काल में पार्वती जी के कहने से उस वृक्ष को शिवजी ने मांगा था; किन्तु इन्द्र ने उसे नहीं दिया। तब शिवजी ने गिरिजा को प्रसन्न करने के लिए मन्द्राचल के पास पारिजात वृक्षों के झुंड-के-झुंड प्रकट कर दिये। शिवजी पारिजात के उस अपने उपवन में किसी को पैर तक नहीं रखने देते। एक बार अन्धक नामक महाप्रतापी दानव

उस ओर निकल गया था। शिवजी ने भीषण युद्ध कर उसे मार डाला।'

'श्रीकृष्णजी ने कहा आप पहले जाकर इन्द्र को समझाइएगा। यदि वे किसी तरह से न मानें तब उनसे कह दीजिएगा कि मैं कल्पवृक्ष को द्वारका में लाने की प्रतिज्ञा कर चुका हूँ। उसे जैसे होगा पूरी करूँगा। यदि इन्द्र सीधे पारिजात न देंगे तो मैं उनके हृदय में गदा मार कर जबरदस्ती उसे यहाँ लाऊँगा।'

'नारद जी ने देव लोक में जाकर इन्द्र से श्रीकृष्णजी का संन्देश कहा। इन्द्र ने खिन्न होकर कहा—'श्रीकृष्णजी को यह सब शोभा नहीं देता। वे मेरे छोटे भाई हैं। उन्हें मेरा अपमान न करना चाहिए। वे यहाँ आकर पारिजात तथा अन्य रत्नों का उपभोग कर सकते हैं। किन्तु देवलोक से पारिजात तथा अन्य रत्नों का जाना मेरे तथा देव-जाति के लिए महा अपमान का कारण होगा। यदि पारिजात पृथ्वी पर चला जायगा तो मनुष्यों में और देवगण में अन्तर ही क्या रह जायगा। फिर मनुष्य स्वर्ग में आने का प्रयत्न ही क्यों करेंगे। स्त्री के वश में होकर कृष्णजी को इस तरह कलह उपस्थित करना उचित नहीं है। पूर्व काल में जब यज्ञ-पुरुष के रूप में उनका सर छिन्न होगया था तब मैं ने ही यत्न करके उन

के सर को जोड़ा था। वे मेरे छोटे भाई हैं, मैं हर प्रकार से उनकी रक्षा करता आ रहा हूँ। यदि वे प्रेम को भुला कर स्त्री के बहकावे में पड़ मुझ से विग्रह करेंगे तो यह उनके लिए उचित न होगा।'

'नारदजी ने इन्द्र को अनेक प्रकार से समझाया और नृसिंह, वामन, वराह, परशुराम आदि अवतारों का वर्णन कर श्रीकृष्णजी का प्रताप उनको समझाया और उन्हें बतलाया कि इस समय पारिजात को दे देने ही में कल्याण है। किन्तु इन्द्र अपनी हठ पर दृढ रहे। उनके कहने से नारद जी श्रीकृष्णजी के पास गए और उनसे इन्द्र का संदेश कह सुनाया। श्रीकृष्णजी उन्हें देवलोक में जाकर देवगण से तथा बृहस्पति आदि से सब बातें बतलाने के लिए वापस भेजा। नारदजी ने देवलोक में जाकर देवगुरु बृहस्पति से सब हाल बतलाया। कृष्णजी की प्रतिज्ञा तथा इंद्र का उत्तर सुनकर बृहस्पति को बड़ा क्षोभ हुआ। उन्होंने इन्द्र से कहा—'तुमने यह काम अच्छा नहीं किया। तीनों लोकों के स्वामी, अजेय भगवान कृष्ण से वैर बाँध कर कुशलतापूर्वक रहना असंभव है। अथवा इसमें तुम्हारा उतना दोष ही क्या है। होनी को कोई टाल नहीं सकता इस काम से तुम्हें हानि उठानी पड़ेगी।' यह कहकर वे इंद्र के पिता महर्षि कश्यप के पास गये। सब बातें सुन

कर कश्यपजी भी बहुत चिन्तित हुए। उन्होंने कहा कि देवशर्मा महर्षि गौतम की स्त्री के साथ छल करने के कारण ही इंद्र को मनुष्य से पराजित हो नीचा देखना पड़ेगा, उसी का यह सब पूर्वरूप है। फिर कुछ सोचकर वे अदिति के साथ देवदेव महादेव को प्रसन्न करने के निमित्त गये। महादेवजी ने उनको पूजा स्तुति से प्रसन्न होकर कहा कि आप देवलोक को जायँ, उपेन्द्र और इंद्र में संधि हो जायगी, उपेन्द्र कल्पवृक्ष को पृथ्वी पर ले जायँगे और इन्द्र उनसे संग्राम में परास्त होकर गौतम के शाप से मुक्त हो जायँगे। उन्हें प्रणाम कर कश्यपजी अदिति सहित देवलोक को गये।

'इधर दूसरे दिन सवेरे श्रीकृष्णजी रथपर चढ़कर शिकार के बहाने रैवतक पर्वत पर गये। वे वहाँ रथ को छोड़कर सात्यकि तथा प्रद्युम्न को लेकर गरुड़ पर बैठ देवलोक को गये और सब के देखते-देखते कल्पवृक्ष को उखाड़कर चल दिये। इन्द्र ने यह समाचार सुनकर उन का पीछा किया और युद्ध के लिए उन्हें ललकारा। कृष्णजी लौट पड़े। घमासान युद्ध प्रारम्भ होगया। इन्द्र के पुत्र जयन्त तथा प्रवर नामक ब्राह्मण ने इंद्र का साथ दिया। घोर संग्राम के अनन्तर गरुड़ के प्रहार से विकल होकर इन्द्र का वाहन ऐरावत नीचे गिरा और पारियात्र नामक

पर्वत पर आ रहा। इन्द्र भी उसके साथ आये। कृष्णजी भी वहीं जा पहुँचे। फिर युद्ध प्रारम्भ हुआ। कृष्णजी के सुभीते के लिए पारियात्र-पर्वत भूमि में विलीन होगया। लड़ते-लड़ते रात हो गई। ऐरावत को बेकाम देख कृष्णजी ने इन्द्र से कहा कि यदि आप उचित समझें तो ऐरावत को रात भर विश्राम देकर कल के युद्ध के लिए ताजा कर लीजिये। इन्द्र तो यह चाहते ही थे। युद्ध बन्द हो गया।

'रात को वहीं रहकर श्रीकृष्णजी ने गंगाजी को स्मरण कर वहीं गंगाजल तथा दिव्य पुष्पों एवं बिल्व पत्रों से शिवजी की आराधना की और स्तुति द्वारा तथा यह कहकर कि शत्रुओं के नाश करने में आप से कोई बराबरी नहीं कर सकता, उन्हें प्रसन्न कर लिया। शिवजी ने उन्हें इन्द्र से तथा षटपुर दानवों से विजय पाने का वर दिया। उसी समय से शिवजी की बिल्वोद केश्वर नामक स्थान सब कामनाओं का देनेवाला हो गया। कृष्णजी ने पर्वत को वर दिया कि जो यहाँ मेरी आराधना करेगा उसे मन चाहा फल मिलेगा। सवेरा होने पर कृष्णजी और इन्द्र में फिर घोर युद्ध प्रारंभ हो गया। युद्ध की भयंकरता इतनी बढ़ी कि तीनों लोक काँप उठे। तब ब्रह्माजी के कहने से कश्यप ने अदिति के साथ कृष्ण और इन्द्र के बीच में खड़े होकर उन्हें समझाया

और युद्ध से रोका। दोनों ने उनके कहने से युद्ध बन्दकर दिया और गंगा स्नानकर सबके साथ इन्द्रलोक को गये। वहाँ इन्द्राणी ने कृष्णजी से कहा कि तुम पारिजात को द्वारका में ले जाओ। अपनी रानी के साथ धर्मकृत्य समाप्त कर उसे फिर स्वर्ग में लौटा देना। यह कहकर उसने कृष्णजी की हर एक रानी के लिए अलग-अलग बहुत से दिव्य अस्त्राभूषण दिये। सबसे विदा होकर श्रीकृष्णजी कल्पवृक्ष को लिये हुए द्वारका को चले गए। राजा उग्रसेन आदि ने उनका बड़ा आदर-सत्कार किया। कृष्णजी ने कल्पवृक्ष को ले जाकर सत्यभामा के महल में लगा दिया। कल्पवृक्ष के प्रताप से द्वारकावासी सुख-सौख्य, धन-धान्य, तेजप्रताप, सुख-स्वास्थ्य, बल-यौवन से परिपूर्ण हो गये।

'यथा समय सत्यभामा ने विधिपूर्वक श्रीकृष्णजी को कल्पवृक्ष में बांधकर सोने-चाँदी के पहाड़ों सहित नारदजी को दान में दे दिया। नारद जी ने गौ के रूप में श्रीकृष्णजी से उनका मूल्य लेकर उन्हें सत्यभामा को लौटाल दिया। सत्यभामा ने अपने यहाँ बुलाकर श्रीकृष्णजी की सभी रानियों को इन्द्राणी द्वारा दिये हुए वस्त्रा-भूषण दिये। श्रीकृष्णजी ने पाण्डवों, शिशुपाल तथा अन्य बन्धु-बान्धवों को कल्पवृक्ष की महिमा देखने के लिए बुलाया। कल्प वृक्ष को देखकर सब बहुत प्रसन्न हुए। एक वर्ष के बाद श्रीकृष्णजी ने देवलोक में जाकर पारिजात को वहाँ स्था-

पित कर दिया। इन्द्र, देवगण, कश्यप, अदिति, आदि श्रीकृष्णजी से मिलकर बहुत प्रसन्न हुए।

अध्याय ७७–८१

पुण्यक-व्रत का विधान-माहात्म्य, रुक्मिणी आदि का व्रत करना

जनमेजय ने पुण्यक नामक व्रत के माहात्म्य एवं विधान पूछे। वैशम्पायनजी बोले—'रुक्मिणीजी के पूछने पर नारदजी ने जो कुछ कहा था उसी का वर्णन मैं यहाँ कर रहा हूँ। नारदजी ने कहा—'पूर्व समय में देव-माता अदिति, इन्द्राणी, रोहिणी, गंगा, सरस्वती, उमा, सावित्री, अग्नि की पत्नी स्वाहा, कुबेर की स्त्री ऋद्धि आदि सभी ने इस व्रत को करके अक्षय पुण्य प्राप्त किया था। दुष्ट-से-दुष्ट स्त्री इस व्रत के प्रताप से पापों से छूटकर पुण्य की भागी बनती हैं। व्रत का विधान इस प्रकार है। प्रातः काल उठकर स्त्री को चाहिए कि पति की आज्ञा लेकर वह इस व्रत का संकल्प करे। फिर बेल, आँवला, नारियल आदि से सिर को धोना और नदी या कमल वाले तालाब में स्नान करना चाहिए। फिर आराधना कर दूध, फल अथवा एक अन्न खाय। इस प्रकार एक वर्ष, छः माह अथवा एक माह नियम-पूर्वक संयम से व्रत करते रहने के अनन्तर पुण्य तिथि में पति को चाँदी, सोना, अन्न, तिल आदि के पहाड़ों के साथ दान करदे। फिर आचार्य

की पूजा कर उन्हें मूल्य देकर पति को वापस ले ले। व्रत करते समय स्त्री को यह प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि मैं मन, वचन, कर्म से सदा हर प्रकार से पति को प्रसन्न रखने की चेष्टा करूँगी। पुण्यक-व्रत में पति की आज्ञा लेकर स्त्री को अपनी शक्ति के अनुसार सभी प्रकार के दान करने चाहिए। सोना दान करने से सुन्दरता, परीवा के दिन व्रत कर चाँदी दान करने से सुन्दर माथा; दूध और घी दान करने से सुन्दर नेत्र, मूँगा दान करने से सुन्दर ओंठ, चाँदी के दाँत दूध में दान करने से सुन्दर दाँत, चाँदी का चन्द्रमा और दूध दान करने से सुन्दर मुख प्राप्त होता है। प्रिय बोलने, सबकी उचित सेवा करने, संयम से रहने और पातिव्रत धर्म पूर्वक पति की सेवा करने से स्त्री स्वयम् सब पापों से मुक्त हो जाती है और अपने दोनों कुलों को भी तार देती है।' नारदजी के मुख से यह विधान सुनकर रुक्मिणी, जाम्बवती, सत्यभामाने विधिपूर्वक इस व्रत को कर अक्षय पुण्य प्राप्त किया।'

अध्याय ८२-८५

षटपुर दानव-वध

जनमेजय ने षटपुर की कथा पूछी। वैशम्पायन जी बोले—'पूर्व-काल में त्रिपुर-दहन के समय निकुम्भ आदि साठ हज़ार भयानक दानव किसी प्रकार से शिवजी के

बाणों से बच कर निकल भागे। उन्होंने शिवजी के भय के कारण पर्वत पर जाकर घोर तप प्रारम्भ कर दिया। दीर्घ काल के बाद ब्रह्माजी ने प्रकट हो कर उन्हें तप से निवारण करना चाहा। दानवों ने पहले अजय-अमर होना और ब्रह्मपद प्राप्त करना चाहा। पर शिव के द्रोही होने के कारण उन्हें ब्रह्माजी ने वह वर न दिया। तब दानवों ने देवगण से अजेय होने और छः अभेद्य पुर प्राप्ति के वर माँगे। ब्रह्माजी ने उन्हें यह वर दे दिया। तब दानवों ने शिवजी से वैर त्याग कर तप, आराधना द्वारा उन्हें प्रसन्न कर लिया। शिवजी ने उन्हें वर दिया कि जब तक तुम जगत का द्रोह न करोगे तब तक कोई भी तुम्हें मार या जीत न सकेगा। यह वर पाकर दानवगण अपने अभेद्य षटपुरों में रहने लगे। वहाँ उन्हें स्वर्ग से भी अधिक सुख प्राप्त होने लगा। कुछ काल बीतने पर वे अत्याचारी हो गये। संसार उनके पापों से विकल हो उठा। तब श्रीकृष्णजी ने शिव जी तथा अन्य देवगण के कहने से लोक कल्याण के लिए षटपुर के नाश का विचार किया।

'षटपुर में ब्रह्मदत्त नामक एक बहुत ही निष्ठावान ज्ञानी तपस्वी ब्राह्मण रहते थे। वे वसुदेव जी के परम मित्र थे। एक बार वे एक बड़ा यज्ञ करने लगे। उनके बुलाने से वसुदेव जी देवकी को लेकर उनके यहाँ गये। सभी ऋषि-मुनि उस यज्ञ में आये थे। यज्ञ हो ही रहा था

कि षटपुर के दानवों ने आकर ब्रह्मदत्त से कहा कि तुम हमें भी यज्ञ में भाग देकर सोमपान कराओ और अपनी सुन्दरी कन्याओं को तथा दिव्य रत्नों को हमें दो । ब्रह्मदत्त ने कहा कि शास्त्रों में तो तुम लोगों को सोमपान कराने तथा यज्ञ में भाग देने का विधान नहीं है, इस कारण हम तुम्हें यज्ञ में भाग नहीं दे सकते और न अपनी कोई कन्या ही दे सकते, मित्रता के नाते तुम्हें रत्न-धन भले ही दे दें । इस पर दानवों ने उनके यज्ञ को विध्वंस कर डाला और उनकी सुन्दरी कन्याओं को वे लोग बलपूर्वक हर ले गये । वसुदेवजी ने श्रीकृष्णजी को ब्राह्मण की रक्षा के लिए बुलाया । सब हाल सुनकर कृष्णजी ने कन्याओं की रक्षा के लिए पहले प्रद्युम्न को भेजा और फिर सेना सहित स्वयं षटपुर पर चढ़ दौड़े । प्रम्द्युन ने माया द्वारा कन्याओं को छुड़ा लिया और उन्हें ब्रह्मदत्त को दे दिया तथा दानवों के पास मायाकी वैसी ही कन्याएँ बनाकर रख दीं ।

'इधर शिशुपाल, दन्तवक्र आदि यदुवंश-विरोधी राजागण दानवों को सहायता देने के लिए षटपुर के पास आये । नारद जी ने लड़ाई देखने के विचार से जा कर दानवों को समझाया कि तुम सुन्दरी कन्याएँ, धन, रत्न देकर शिशुपाल आदि को मिलालो तो यदुवंशी तुम्हारा कुछ न बिगाड़ सकेंगे । दानवों ने वैसा ही किया । पाण्डवों को छोड़-कर और सब राजागण दानवों के सहायक हो गये । इसी

बीच में कृष्णजी ने यदुवंशियों के साथ पटपुर पर आक्रमण किया। घोर युद्ध होने लगा। घमासान लड़ाई के बाद देवगण की माया के कारण शिशुपाल, दन्तवक्र आदि बाँध कर गुफा में डाल दिये गये। अन्त में कृष्णजी ने दानवों के सभी प्रयत्न और अस्त्र-शस्त्र को विफल कर निकुम्भ सहित उन्हें मार डाला और पटपुर का राज्य ब्रह्मदत्त को दे दिया। ब्रह्मदत्त ने यज्ञ द्वारा शिवजी तथा देव गण को प्रसन्न किया और हजारों सुन्दरी दानव-कन्याओं को यदुवंशी वीरों को देकर उन्हें सन्तुष्ट कर दिया। कृष्णजी सबको लेकर प्रसन्नतापूर्वक द्वारका गये। दानवों के नष्ट होने से तीनोंलोक सुखी हो गये।

अध्याय ८६—८७

अधक दानव-वध

वैशम्पायनजी बोले—'पूर्व काल में दिति के पुत्र दानवों को अदिति के पुत्र देवगण ने मार डाला। दिति को बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने घोर तप कर कश्यपजी को प्रसन्न किया और ऐसा पुत्र चाहा जो किसी से न मरे। कश्यपजी नें उसे अन्धक नामक महापराक्रमी पुत्र देकर कहा कि शिवजी को छोड़कर इसे दूसरे किसी से भी भय न होगा। कुछ समय बाद अन्धक ने अपने बल-प्रताप से सब को जीतकर चक्रवर्ती राज्य स्थापित किया और

फिर वह तीनों लोकों को जीतने का उपक्रम करने लगा। यह देख इन्द्र को बड़ा भय हुआ। उनके प्रार्थना करने पर उनके पिता कश्यपजी ने जाकर अन्धक को समझा दिया कि तुम तीनों लोकों को जीतने का उपक्रम छोड़ दो। अन्धक ने पिता के कहने से वह उपक्रम तो छोड़ दिया, किन्तु समय-समय पर स्वर्ग में जाकर वहाँ से धन, रत्न, सुन्दरी कन्याओं को बलपूर्वक हर लाना न छोड़ा। उसने सभी प्रकार के सुन्दर रत्न, उत्तम पदार्थ और सुन्दरी स्त्रियों को अपने यहाँ एकत्र करना प्रारम्भ किया। उसके अन्याय, अत्याचार, उपद्रव, लूटपाट से घबराकर देवगण उसके वध का उपाय सोचने लगे।

'अन्त में सबके प्रार्थना करने पर नारदजी अन्धक को शिवजी के द्वारा नष्ट कराने के लिए उपाय करने लगे। एक बार वे सन्तानक वृक्षों के पुष्पों की माला पहनकर अन्धक के पास गये। अन्धक उन पुष्पों पर मुग्ध हो गया। उसके पूछने पर नारदजी ने बतलाया कि ये पुष्प शिवजी के वन के वृक्षों के हैं। उन वृक्षों से मनचाहे सभी पदार्थ प्राप्त हो सकते हैं। नारदजी के कहने से अन्धक सेना लेकर मन्दराचल पर्वत पर शिवजी के उपवन में गया। वहाँ जाकर उसने मन्दराचल के शिखरों को उखाड़कर वन आदि को नष्ट-भ्रष्ट करना प्रारम्भ किया। यह देख शिवजी ने अपने गणों को भेजकर

अन्धक को शान्त करना चाहा, किन्तु वह न माना। उसने शिवजी के गणों को मारकर नष्ट करना प्रारम्भ किया। यह देख शिवजी को क्रोध आ गया। वे स्वयं युद्ध करने लगे। अन्त में विकट संग्राम के अनन्तर उन्होंने त्रिशूल से अन्धक का वध कर डाला। अन्धक के मरने पर सब बहुत प्रसन्न हुए। देवगण ने विधिपूर्वक पूजा-स्तुति कर शिवजी को प्रसन्न किया। इस प्रकार संसार अन्धक के संकट से मुक्त हुआ।

अध्याय ८८–९०

समुद्र-यात्रा, भानुमती-हरण, निकुम्भ-वध

वैशम्पायनजी बोले—'एक बार कृष्णजी की आज्ञा से सभी यदुवंशी सजधज कर स्त्री-पुत्रों सहित समुद्रयात्रा के लिए पिंडारक क्षेत्र गये। वहाँ पहुँचकर सब ने अपनी स्त्रियों तथा प्रेयसियों सहित खूब जलक्रीड़ा की। श्रीकृष्णजी की आज्ञा से स्वर्ग की अप्सराओं ने वहाँ आकर जल-क्रीड़ा में भाग लिया और यदुवंशियों को बहुत प्रसन्न किया। जल से निकलकर सब ने अपने मन के अनुकूल दिव्य वस्त्र धारण किये और मनमाने उत्तम पदार्थों का भोजन कर वे नृत्य, गायन, हास्य, लास्य, विहार में संलग्न हो गए। अप्सराएँ हाव-भाव, नृत्य-गायन आदि से उनका मन हरने लगीं। श्रीकृष्ण के साथ नारद भी विहार कर रहे थे।

'उधर रागरंग चल रहा था, इधर द्वारका को अरक्षित अवस्था में देखकर भानु नामक यादव की भानुमती नामक सुन्दरी कन्या को निकुम्भ नामक दानव हर ले गया। उसके भाई वज्रनाभ नामक दानव की प्रभावती नामक सुन्दरी कन्या को पहले प्रद्युम्न ने हरण किया था। निकुम्भ उसी का बदला लेना चाहता था। अवसर देख कर वह भानुमती को लेकर भाग निकला। भानुमती तथा अन्य स्त्रियों के रोने-चिल्लाने को सुनकर वसुदेव आदि उनकी रक्षा के लिए गये। किन्तु दानव के सामने वे टिक न सके। तब उन्होंने श्रीकृष्णजी के पास दूत भेजा। श्रीकृष्णजी प्रद्युम्न को लेकर वहाँ आये और दानव से युद्ध करने लगे। श्रीकृष्णजी के सामने न ठहर सकने के कारण वह कन्या को लेकर भागा। प्रद्युम्न आदि को लेकर श्रीकृष्णजी ने उसका पीछा किया। बहुत युद्ध के बाद अन्त में वे गोकर्ण तीर्थ में राक्षस से उस कन्या को छुड़ा सके। श्रीकृष्णजी की आज्ञा से प्रद्युम्न भानुमती को द्वारका पहुँचा आये। इसी बीच में दानव भागकर षटपुर चला गया और वहाँ माया युद्ध से उसने सबको विस्मित और त्रस्त कर डाला। उसने अपने ही समान रूप, रंग, बल, पराक्रम वाले हजारों योद्धा प्रकट किये। उसकी यह माया देख सब घबरा उठे। इसी बीच में उसने माया करके अर्जुन के अस्त्र शस्त्र हरण कर लिये और उन्हें वह उठाकर आकाश में ले

गया। यह देख श्रीकृष्णजी को बड़ा क्षोभ हुआ। अन्त में उन्होंने भीषण युद्ध कर निकुम्भ का सर काट डाला। सब माया दूर हो गई। अर्जुन को संभाल कर श्रीकृष्णजी ने नीचे उतार दिया। देवता प्रसन्न हो गये। श्रीकृष्णजी सबको लेकर द्वारका गये। वहाँ नारदजी ने उन्हें बतलाया कि लड़कपन में अपनी चंचलता से भानुमती ने दुर्वासा ऋषि को कुपित किया था। तब दुर्वासाजी ने उसे शाप दिया था कि तुझे दैत्य हरण करेगा, किन्तु फिर तेरा उद्धार हो जायगा और तू पति-पुत्रों का दिव्य सुख प्राप्त करेगी। इसी शाप के कारण इसका हरण हुआ है। यह शुद्ध है। यदुवंशी इसके लिए चिंतित न हों। उसे शुद्ध जानकर श्रीकृष्णजी ने सहदेव को बुलाकर उनके साथ भानुमती का विधि-पूर्वक विवाह कर दिया। इस विवाह से पाण्डव और यदुवंशी दोनों बहुत प्रसन्न हुए।'

अध्याय ९१-९७

वज्रनाभ दानव, वज्रनाभपुर, प्रभावती-प्रद्युम्न-विवाह, हंसों द्वारा जासूसी, यदुवशी नट के वेश में, वज्रनाभ-वध

'पूर्व काल में कश्यप के पुत्र वज्रनाभ नामक दैत्य ने घोर तप किया। ब्रह्माजी ने उसे वर दिया कि तुझे युद्ध में देव-दानव कोई न जीत सकेगा और तेरे वज्रपुर नामक नगर में विना तेरी आज्ञा के वायु तक का प्रवेश

न हो सकेगा। इस वर के प्रभाव से वज्रनाभ बहुत प्रबल हो गया। दूसरे हजारों प्रबल दानव उसे अपना राजा मानकर उसी की आज्ञा में चलने लगे। वज्रपुर में रहकर वज्रनाभ सब पर शासन करने लगा। सबको जीतने के बाद स्वर्ग में जाकर उसने इन्द्र से कहा कि या तो तुम मुझे त्रिलोकी का राज दे दो या मुझसे युद्ध करो। इन्द्र उसके वरदान का हाल जानते थे। इस कारण उससे बोले कि हमारे तुम्हारे पिता कश्यप जी हैं। वे जो आज्ञा देंगे उसी के अनुसार हम लोगों को चलना चाहिए। वज्रनाभ इन्द्र को साथ लेकर कश्यप के पास गया। उसकी बात सुनकर कश्यपजी ने उससे कहा कि मैं इस समय यज्ञ कर रहा हूँ, इसके अनन्तर जो उचित होगा वह मैं बतलाऊँगा। तब देवलोक के रत्नों को और अप्सराओं को लेकर वज्रनाभ अपने पुर में लौट आया।

'वज्रनाभ के अत्याचार से घबरा कर इन्द्र श्रीकृष्णजी की शरण में गये। सब हाल सुनकर श्रीकृष्णजी ने कहा कि वज्रनाभ की आज्ञा बिना वायु तक का प्रवेश वज्रपुर में असंभव है। वहाँ लोगों के जाने का प्रबंध कर दीजिए तो मैं उस दानव को मार कर जगत का संकट दूर कर दूँगा।

'इन्द्र ने देवलोक के कुछ दिव्य हंसों को सिखा-पढ़ाकर वज्रपुर के समीप भेजा। हंस अपने मधुर शब्दों द्वारा दिशाओं को गुँजाने लगे। संयोग से वज्रनाभ ने उनके

शब्दों को सुना और मुग्ध होकर वह उन्हें अपने नगर में लिवा लाया। हंस अपनी मधुर वाणी से सबको प्रसन्न करते हुए वज्रपुर में विचरण कर वहाँ के भेद लेने और सबसे परिचय प्राप्त करने लगे। कुछ समय बाद एक हंसी ने वज्रनाभ की पुत्री प्रभावती का पूर्णरूप से विश्वास प्राप्त कर लिया। एक दिन उसने एकान्त में प्रभावती के अलौकिक रूप और गुणों की प्रशंसा कर उससे कहा कि तुम्हें अपने रूप-गुण के अनुरूप ही पति का वरण करना चाहिए। फिर उसने प्रद्युम्न से अलौकिक रूप और गुणों का इस प्रकार से वर्णन किया कि प्रभावती उनके ऊपर मुग्ध हो गई। उसने मन में उनका वरणकर हंसी से प्रार्थना की कि किसी तरह उन्हें यहाँ बुला लाओ। हंसी ने द्वारका में जाकर प्रद्युम्न से प्रभावती के रूप और गुणों की बड़ाई कर उनसे उसका प्रणय-संदेश कह सुनाया। प्रद्युम्न ने यह कह कर उसे प्रभावती के पास लौटा दिया कि मैं यथा समय वहाँ आऊँगा, तुम उसे धैर्य बंधाती रहना। हंसी प्रभावती के पास लौट गई और उसका मनोरंजन करती हुई उसकी रक्षा करने लगी।

'इधर वज्रपुर में रह कर हंस वज्रनाभका मनोरंजन करने लगे। एक बार हंसों ने एक अद्भुत कर्म करने वाले दिव्य नट की कला का ऐसा मनोहारा वर्णन किया कि वज्रनाभ उस कला को देखने लिए अधीर हो उठा।

उसने हंसों से कहा कि तुम जैसे हो तुरन्त उस नट को यहाँ बुलाओ। हंस प्रति दिन का समाचार बराबर इन्द्र एवं कृष्ण जी को देते जाते थे। उन्होंने नट वाली बात भी जाकर बतलाई। श्रीकृष्णजी ने इन्द्र की सलाह से अपने वीर पुत्र प्रद्युम्न, गद, साम्ब के साथ अनेकानेक यादव-योद्धाओं को तथा कुशल यादव-स्त्रियों को नट-नटी के वेश में वज्रनाभ के यहाँ भेजा। वे सब पहले से ही नट-विद्या की शिक्षा लेकर उसमें पूर्ण पारंगत हो चुके थे। पहले उनका तमाशा वज्रपुर के बाहर शाखा-नगर में कराया गया। उनकी कला इतनी अद्भुत और मनोमुग्धकारी थी कि छोटे-बड़े स्त्री-पुरुष सभी आश्चर्य चकित रह गए। उनके द्वारा खेले गये नाटकों ने सभी को मुग्ध कर दिया। बहुत-सा धन-रत्न देकर वज्रनाभ उन्हें वज्रपुर में ले आया। वहाँ रह कर वे सबका मनोरंजन करने लगे। सब का उनके प्रति आदर, प्रेम और सत्कार दिन-पर-दिन बढ़ता चला गया। अनेक नाटकों का अभिनय कर उन लोगों ने सब को मुग्ध कर लिया। वे सब गुप्त वेश में रह कर वज्रपुर के सभी छोटी-बड़ी बातों का पता लेने लगे। नटी बनी हुई यादव स्त्रियों ने अपने कौशल, वाक्य चातुरी और मिलनसारी से सभी दानव-स्त्रियों को अपने वश में कर लिया।

'कुछ समय बाद हंसी के उद्योग से प्रद्युम्न प्रभावती

से मिले। उनके रूप यौवन पर मुग्ध होकर प्रभावती ने उनके साथ गन्धर्व विवाह कर लिया। प्रद्युम्न छिपकर प्रभावती के महलों में जाने और उससे विहार करने लगे। कुछ समय बीतने पर वज्रनाभ ने छोटे भाई सुनाभ की चन्द्रवती और गुणवती नामक कन्यत्रों ने अपनी वहन प्रभावती को विहार के चिन्हों से युक्त देख उससे अनेक प्रकार के प्रश्न करने प्रारम्भ किये। प्रभावती ने प्रद्युम्न की सलाह से अपनी बहनों को यह कहकर साम्ब और गद के साथ गन्धर्व विवाह करने के लिए राजी कर लिया कि दानववंश अपने दुर्गुणों और दुराचरणों के कारण शीघ्र ही नष्ट हो जायगा इसलिए दानवों में से किसी को अपना पति बनाना कल्याणकारी न होगा। प्रभावती के कहने से चन्द्रवती ने साम्ब के और गुणवती ने गद के साथ विवाह कर लिया। साम्ब और गद भी प्रद्युम्न की तरह छिपकर दानव-कुमारियों के साथ विहार करने लगे। वर्षा ऋतु और चन्द्रदेव के कवित्व-पूर्ण वर्णन के बहाने प्रद्युम्न ने अपने कुल के प्रताप का वर्णन कर प्रभावती को पूर्ण रूप से अपने अनुकूल कर लिया।

'कुछ समय बीतने पर तीनों दानव कुमारियों ने सुन्दर लक्षणों वाले पुत्रों को जन्म दिया। इसी समय वज्रनाभ को यादवों के रहने का सब भेद मालूम हुआ। उसने क्रोध कर आज्ञा दी कि राजकुमारियों के महल घेर

लिये जायँ और दानव-वंश के कलंक नवजात शिशु और दानवों के शत्रु प्रद्युम्न आदि मार डाले जायँ। अपने पुत्रों को संकट में देख प्रभावती आदि बहुत घबरा गईं। प्रद्युम्न ने उन्हें समझाया कि जबतक हम लोग जीवित हैं तब तक दानव तुम्हारा और तुम्हारे पुत्रों का कुछ भी अनिष्ट नहीं कर सकते। प्रभावती ने प्रद्युम्न से कहा कि अब आप लोग क्षत्रियों की तरह शस्त्र ग्रहण कर अपने पुत्रों की दानवों से रक्षा कीजिए और अपने यादव-वंश का गौरव स्थापित कीजिए। उसके कहने से प्रद्युम्न ने नट बने हुए यदुवंशियों को साथ लेकर दानवों का सामना किया। भीषण संग्राम होने लगा। हंसों के द्वारा सब समाचार पाकर इन्द्र ने अपने पुत्र जयंत, मित्र प्रवर, अपने वाहन ऐरावत हाथी, उच्चःश्रवा घोड़ा, दिव्य रथ, अमोघ अस्त्र-शस्त्र आदि प्रद्युम्न की सहायता के लिए भेजे। प्रद्युम्न इस दैवी सहायता को पाकर दूने उत्साह से युद्ध करने लगे। एक दिन और एक रात में उन्होंने अधिकांश दैत्य-सेना को नष्टकर डाला। दूसरे दिन सबेरे श्रीकृष्णजी गरुड़ पर सवार होकर आए। दानवों का तेज नष्ट हो गया। वज्रनाभ ने भीषण युद्ध किया, बड़ी माया रची, किन्तु अन्त में प्रद्युम्न ने चक्र से उसका सर काट डाला। अधिकांश दैत्य-सेना नष्ट होगई। जो थोड़ी सी बची उसे वज्रनाभ का भाई निकुम्भ लेकर षटपुर को

भाग गया। कुछ समय बाद यही निकुम्भ भानुमती को हरण करते समय मारा गया।

'वज्रनाभ के मारे जाने पर इन्द्र और कृष्णजी ने बृहस्पति जी की सलाह से उस राज्य के चार भाग किये। प्रत्येक भाग में जयन्त के पुत्र विजय को तथा प्रद्युम्न, साम्ब और गद के पुत्रों को अलग-अलग गद्दी पर बैठाल दिया। चारों में धन-सम्पति, रत्न आदि बराबर-बराबर बाँट दिये। सबको आपस में प्रेम पूर्वक एक दूसरे की सहायता करने का उपदेश देकर श्रीकृष्णजी यादवों सहित द्वारका को और इन्द्र देवलोक को चले गये। प्रद्युम्न, गद और साम्ब कुछ समय तक राज्य व्यवस्था को संभालने के लिए अपने-अपने पुत्रों के राज्यों में रहे।

अध्याय ९८-१०२

विश्वकर्मा द्वारा द्वारका का निर्माण, नारद द्वारा गुणानुवाद

वैशम्पायनजी बोले—'वज्रनाभ के मरने पर इन्द्र ने विश्वकर्मा को बुलाकर आज्ञा दी कि तुम अमरावती के समान ही द्वारका को महल, उद्यान, बावली, तालाब, क्रीड़ा-गृह, क्रीड़ा-शैल, सड़क, चौरास्तों आदि से सुशोभित कर दो। विश्वकर्मा ने इन्द्रकी आज्ञा पाकर अपने कौशल से द्वारकापुरी को इन्द्रपुरी से भी अधिक सुशोभित कर दिया। कृष्णजी, बलदेवजी, उनकी सभी रानियों, वसुदेव,

उग्रसेन तथा अन्य यादवों के लिए अलग-अलग महल, बाग़ीचे आदि तैयार कर दिये। प्रत्येक महल में स्वर्ग से भी अधिक उत्तम दिव्य पदार्थ और रत्न आदि भरे हुए थे। विश्वकर्मा ने द्वारका में संसार में प्राप्त होने वाले सभी तरह के वृक्ष, सभी तरह के पर्वत, सभी तरह के उद्यान, सभी तरह के क्रीड़ा-गृह और सभी तरह के अन्य सुखोपभोग के पदार्थ उपस्थित कर दिये। स्फटिक-मणि के खंभों एवं हेम तथा रत्नों की जालीदार सुन्दर खिड़कियों से युक्त, नाना प्रकार के सुन्दर पक्षियों से सेवित, कमल, चम्पा आदि से सुशोभित द्वारकापुरी सुदृढ़ परकोटे के भीतर इन्द्रपुरी से भी अधिक दर्शनीय हो गई।

'विजय के अनन्तर श्रीकृष्णजी द्वारका में गये। वहाँ उग्रसेन आदि ने उनका बड़े प्रेम से स्वागत किया। कृष्णजी ने दानवों के यहाँ के सभी धन, रत्न, दिव्य पदार्थ उग्रसेन के आगे रख दिये और फिर यथायोग्य सभी यदुवंशियों को बाँट दिये। सब प्रसन्न हो उनकी स्तुति करने लगे। कृष्णजी की सोलह हजार रानियाँ सब से पूजा और सत्कार पाकर अपने-अपने महलों में यज्ञ-याग करने लगीं। इसी बीच में नारदजी ने इन्द्र के आग्रह से वहाँ जाकर सब के सामने सभा में श्रीकृष्णजी के पूर्व अवतारों का एवं इस अवतार की आदि से लेकर अन्त तक की समस्त लीलाओं का विस्तार से वर्णन किया और कहा कि ये संसार के

प्राणिमात्र से, भूतों से उसी तरह निरन्तर क्रीड़ा करते रहते हैं जैसे बालक खिलौनों से खेलता है। स्तुति के बाद सबसे सत्कृत हो नारदजी देवलोक को गये।'

अध्याय १०३-१०६

श्रीकृष्णजी के पुत्रो के नाम, प्रद्युम्न-हरण और शम्बर-वध

जनमेजय ने श्रीकृष्णजी के पुत्रों की तथा प्रद्युम्न द्वारा शंबर के वध की कथा सुननी चाही। वैशम्पायनजी बोले—'श्रीकृष्णजी ने रुक्मिणी से प्रद्युम्न, चारुदेष्ण, चारु-भद्र, चारुगर्भ, सुदेष्ण, द्रुम, सुषेण, चारुविंद, चारु-बाहु नामक पुत्र, एवं चारुवती कन्या; सत्याभामा से भानु, भीमरथ, रोहित, दीप्तिमान, ताम्राक्ष, जलांतक नामक, पुत्र और ताम्रपर्णी, जलंधमा आदि कन्याएँ; जाम्बवती से साम्ब, मित्रवान, मित्रविंद, मित्रबाहु, सुनीथ नामक पुत्र एवं मित्रवती नामक कन्या; नाग्नजिती से भद्रकार, भद्रविंद आदि पुत्र एवं भद्रवती कन्या; तथा अन्यान्य पटरानियों, रानियों से उत्तम गुण-लक्षण वाले पुत्र उत्पन्न किये। उनका वंश इतना बड़ा कि उसका गिनना सरल नहीं है।

पूर्वकाल में शिवजी ने काम को भस्म कर नष्ट कर डाला था। बाद में उसकी स्त्री रति की प्रार्थना से प्रसन्न होकर उसे वर दिया था कि तेरा पति अनंग होकर संसार भर के जीवों में व्याप्त होगा और जब द्वापर के अन्त में कृष्णजी

का अवतार होगा, तब वह (काम) उनके पुत्र के रूप में प्रकट होगा। शम्बरासुर को शाप था कि तू कृष्ण के पुत्र काम (प्रद्युम्न) के हाथों से मारा जायगा। इस कारण जब रुक्मिणी के प्रद्युम्न ने जन्म लिया तब शम्बरासुर ने दानवी माया से सबको मोहित कर सातवें दिन बालक (प्रद्युम्न) का हरण किया, किन्तु बालक के रूप-गुणों के मोह में पड़ कर वह उसे मार न सका। अपने पति की प्राप्ति की आशा से देवगण के कहने पर काम की स्त्री रति ने मायावती के रूप में शम्बर के यहाँ रहना प्रारंभ किया था। शम्बर ने मायावती को अपनी रानी बनाया। किन्तु अपनी मोहिनी माया के द्वारा मायावती शम्बर के पास अपना रूप बना दूसरी स्त्रियों को भेज स्वयं अपना सतीत्व बचाये रहती थी। शम्बर ने प्रद्युम्न को लाकर मायावती के हवाले किया। मायावती ने उन्हें धात्रीके द्वारा दूध पिलाकर बड़ा किया और धीरे-धीरे सभी प्रकार की दैवी और आसुरी मायाओं को तथा दिव्य अस्त्र-शस्त्रों के प्रयोगों को उन्हें पूरी तरह से सिखला दिया। जब वे युवा हुए तो मायावती उन्हें अपने हाव, भाव, कटाक्षों द्वारा अपनी ओर आकर्षित करने लगी। प्रद्युम्न को बड़ा आश्चर्य हुआ। वे उसे अपनी माता मानते थे। उन्होंने बिगड़कर इस विपरीत व्यवहार का कारण पूछा। मायावतो ने आदि से सब हाल बतला कर कहा कि शम्बर तुम्हारा शत्रु है, इसे मार कर अपने

माता-पिता के पास चलो।

'सब हाल जानकर प्रद्युम्न को बड़ा क्रोध आया। लड़ाई के विचार से उन्होंने शम्बर की मुख्य ध्वजा को काटकर गिरा दिया और उसे लड़ने के लिए ललकारा। भेद खुला हुआ देख शम्बर ने प्रद्युम्न को मार डालने के उपाय किये। किन्तु सब निष्फल गये। प्रद्युम्न ने देखते-देखते अपने असाधारण पराक्रम से उसके सौ पुत्रों, प्रमुख वीरों और अधिकांश सेना को काट डाला। यह देख शम्बर स्वयं आकर उनसे लड़ने लगा। इसी बीच में इंद्र ने नारद के द्वारा प्रद्युम्न के पास अभेद्य कवच, अमोघास्त्र, इच्छागामी वाहन आदि भेजे। प्रद्युम्न दुगुने उत्साह से युद्ध करने लगे। शम्बर ने भयंकर अस्त्र-शस्त्रों के प्रयोग किये, सभी दानवी मायाओं की रचना की। किन्तु प्रद्युम्न ने सभी को व्यर्थ कर दिया और अन्त में उसका सर काट डाला। देवगण ने प्रसन्न होकर पुष्पों की वर्षा की।

'शम्बर को मारकर प्रद्युम्न रति (मायावती) को लेकर आकाश-मार्ग से द्वारका गये और अपनी माता के महलों में उतरे। उनको देखकर सभी को बड़ा कुतूहल हुआ। रुक्मिणी ने उन्हें देखकर कहा कि यदि मेरा पहला पुत्र प्रद्युम्न रहता तो इसी प्रकार का होता। इसी बीच में कृष्णजी नारद के साथ वहाँ आये। नारदजी ने आदि से लेकर शम्बर-वध तक की सब बातें विस्तार से बतलाकर

कहा कि ये ही आपके पुत्र प्रद्युम्न हैं और यह इनकी सती पत्नी रति है। प्रद्युम्न-रति ने सब के पैर छुए। सब ने उन्हें प्रेमपूर्वक हृदय से लगाकर आशीर्वाद दिये। रुक्मिणी के आनन्द की सीमा न रही। द्वारका में बड़ा उत्सव मनाया गया। रति के सहित प्रद्युम्न द्वारका में सुख से रहने लगे। बलरामजी ने सब प्रकार की रक्षा के निमित्त प्रद्युम्न को रक्षा-कवच एवं आह्निकस्तोत्र बतलाया। इस स्तोत्र से सभी प्रकार की बाधाएँ दूर होती हैं।

अध्याय ११०—११५

धन्योपाख्यान, कृष्णजी का माहात्म्य, ब्राह्मण-पुत्र का रहस्य

वैशम्पायनजी बोले—'साम्ब के जन्म के अवसर पर विभिन्न देशों के राजा अपनी-अपनी सेना लेकर द्वारका में कृष्णजी के दर्शन करने आये। सब के लिए उचित निवास-स्थान तथा अन्य वस्तुओं का प्रबन्ध करा कर कृष्णजी ने सब का खूब आदर-सत्कार किया। देव-दुर्लभ पदार्थों को पाकर सब बड़े प्रसन्न, बहुत विस्मित हुए। एक बार उन राजाओं की सभा में श्रीकृष्णजी बैठे थे। उसी समय नारदजी वहाँ आये। सबने उनका उचित आदर-सत्कार किया। नारदजी ने सबके सामने कहा—'आप लोग श्रीकृष्णजी का माहात्म्य नहीं जानते।

इसीलिए इन्द्र के कहने से मैं आप लोगों को कुछ रहस्य और तथ्य की बातें बतलाने के निमित्त यहाँ आया हूँ। पूर्व काल में मैं एक बार गंगा स्नान करने जा रहा था। रास्ते में मुझे पर्वत के समान विशाल शरीर वाला एक कच्छप मिला। मैंने उसे देख, उसे धन्य कह कर उसकी प्रशंसा की। उसने कहा कि मेरे ऐसे असंख्य जीवों को गंगा जी धारण किये है। तब मैंने गंगाजी के पास जा, उन्हें धन्य कह कर उनकी स्तुति की। उन्होंने कहा कि मुझ से अधिक तो सागर है जिसमें मेरी ऐसी अनेकानेक नदियाँ समा जाती हैं। तब मैंने सागर के पास जाकर उसको आश्चर्य-मय तथा धन्य कहा, और मैं उसकी स्तुति करने लगा। समुद्र ने कहा कि मुझसे अधिक आश्चर्यमय तो पृथ्वी है जो मुझे धारण किये है। मैंने पृथ्वी को आश्चर्यमय एवं धन्य बतलाकर उसकी स्तुति की। पृथ्वी ने कहा कि मुझसे अधिक आश्चर्यमय तो पर्वत हैं। पर्वतों ने कहा कि हम सब से अधिक आश्चर्यमय हैं ब्रह्माजी; ब्रह्माजी ने कहा कि हम से भी अधिक आश्चर्यमय हैं वेद। वेदों ने कहा कि हम से कहीं अधिक आश्चर्यमय हैं यज्ञ। यज्ञों ने कहा कि हम सब से श्रेष्ठ और अधिक आश्चर्यमय हैं भगवान, कारण कि वे ही तो वेदों के तथा दक्षिणा सहित यज्ञों के अन्तिम आधार हैं। सबकी अनन्य गति हैं। तब मैं भगवान के

दर्शनों के निमित्त व्याकुल हो उठा। उसी समय योग-बल से मुझे पता चला कि इस पृथ्वी पर सबकी अनन्य-गति तो भगवान श्रीकृष्णजी हैं। ये ही धन्य हैं। जगत के कल्याण के निमित्त ही भगवान ने कृष्ण रूप से पृथ्वी पर अवतार लिया है। इनकी महिमा को कोई नहीं जान सकता।' यह कह कर नारदजी देवलोक को चले गये।

'एक बार अर्जुन ने युधिष्ठिर की सभा में कृष्णजी का माहात्म्य वर्णन करते हुए बतलाया कि कुछ समय पूर्व द्वारका का एक ब्राह्मण कृष्णजी के पास आया और उन से अपने पुत्र की रक्षा के लिए गिड़गिड़ाकर प्रार्थना करने लगा। उसने कहा कि मेरे तीन पुत्र जन्म लेते ही किसी घोर राक्षस द्वारा हर लिये गये हैं। मुझे आज तक उनका पता न लगा। अब चौथे पुत्र के उत्पन्न होने का समय आ गया है। किन्तु मुझे भय है कि कहीं इसकी भी वही दशा न हो। आप चलकर उसकी रक्षा कीजिए। श्रीकृष्णजी ने कहा कि इस समय मैं विधिपूर्वक दीक्षा लेकर यज्ञ कर रहा हूँ, इस समय तो मेरा यहाँ से हटना उचित न होगा। कृष्णजी के वचन सुनकर और ब्राह्मण की व्याकुलता देख, मैंने (अर्जुन ने) कहा कि यदि आप आज्ञा दें तो मैं जाकर ब्राह्मण के पुत्र की रक्षा करूँ। कृष्णजी ने हँस कर कहा कि उसकी रक्षा करना साधारण बात नहीं है।

अपने पराक्रम का घमंड कर मैं हठ करने लगा। श्रीकृष्णजी ने अन्त में मेरी बात मान ली। मै अपने दिव्य अस्त्रों-शस्त्रों को लेकर सात्यकि आदि यदुवीरों के साथ ब्राह्मण के मकान पर गया और बाणों से उस मकान को इस तरह से तोप दिया कि बिना मेरी आज्ञा वायु तक का प्रवेश करना बन्द हो गया। किन्तु बहुत प्रयत्न करने और खूब सावधान रहने पर भी आधी रात के बाद ब्राह्मण का पुत्र जन्म लेते ही न जाने कहाँ विलीन होगया, बहुत खोजने पर भी कहीं उसका पता न लगा। ब्राह्मण विलाप करने और मुझे नपुंसक, कापुरुष आदि दुर्वचन कहने लगा। मुझे बड़ी ग्लानि, बड़ी लज्जा मालूम हुई, बड़ा क्रोध लगा, बड़ा क्षोभ हुआ। मैंने योग-बल से इन्द्र-लोक, यम-लोक, वरुण-लोक आदि में उस ब्राह्मण-कुमार का पता लगाना चाहा, किन्तु वह कहीं भी न मिला। अन्त में लज्जा, ग्लानि और पराजय से खिन्न होकर मैं अग्नि में जलने के लिए तैयार हो गया। तब श्रीकृष्णजी ने मुस्कुराकर मुझे जल-मरने से रोका। फिर अपने दिव्य रथ पर मुझे और उस ब्राह्मण को चढ़ाकर वे एक ओर को चले। बात-की-बात में मन के समान तेज चलनेवाले उनके रथ ने पृथ्वी, समुद्र, पर्वत आदि को पार कर लोकालोक पर्वत के आगे के स्थान में प्रवेश किया। वहाँ घोर अन्ध-

कार था। कृष्णजी की आज्ञा से सुदर्शन चक्र ने प्रकाश कर मार्ग दिखाना प्रारम्भ किया। कुछ समय बाद हमें सामने एक अद्भुत और अलौकिक तेज-पुंज देख पड़ा। उसमें प्रवेश करने की किसी में भी सामर्थ्य न थी। कृष्णजी हम लोगों को रथ पर छोड़कर बिजली की तरह चमक कर उस प्रकाश-पुंज में प्रविष्ट होगए और देखते-देखते ब्राह्मण के चारों बालकों को लेकर हम लोगों के पास लौट आए। मेरे पूछने पर उन्होंने बतलाया कि यह तेज-पुंज विश्व का आदि कारण, प्रकृति की सनातन आदि शक्ति, महत्तत्व ब्रह्मतेज है। मेरे दर्शन के लिए ही इसने ब्राह्मण के बालकों का हरण किया था। मेरे सिवा दूसरा कोई इस तेज से पार नहीं पा सकता। यह सारी व्यक्त-अव्यक्त विभूति मेरे ही कारण है। सभी में मेरी शक्ति काम कर रही है। इस प्रकार ज्ञान-तत्व बतलाते हुए श्रीकृष्ण जी द्वारका में लौट आए। ब्राह्मण अपने पुत्रों के साथ आनन्द से रहने लगा। इस प्रकार वासुदेव का अद्भुत माहात्म्य सुनकर पाण्डव-कौरव बहुत प्रसन्न और विस्मित हुए।

'जनमेजय के पूछने पर वैशम्पायनजी ने श्रीकृष्णजी की लीलाओं का संक्षेप में बार-बार वर्णन किया।'

अध्याय ११६—१२८

वाणासुर को शिव का पुत्रत्व और राज्य, उषा का स्वप्न, चित्रलेखा का अनिरुद्ध को लाना, उष-अनिरुद्ध विहार, अनिरुद्ध-कैद में, कृष्ण-शिव-युद्ध, वाणासुर की पराजय, उषा-अनिरुद्ध-विवाह, कृष्ण-वरुण-युद्ध

वैशम्पायनजी बोले—'वलि के पुत्र वाणासुर ने घोर तप कर शिवजी से हजार भुजाएँ प्राप्त कीं और अतुलित बल भी। अपनी सेवा से शिवजी को प्रसन्न कर वह उन्हीं के साथ वहाँ रहने लगा। वहाँ रहते समय उसने देखा कि स्वामि-कार्त्तिक की विचित्र क्रीड़ाओं से प्रसन्न होकर पार्वती तथा शिवजी उन पर बड़ा स्नेह रखते हैं। वाणासुर के मन में शिव-पार्वती का पुत्र होने और उनके स्नेह को प्राप्त करने की लालसा उत्पन्न हुई। उसने इसके लिए घोर तप प्रारम्भ किया। शिवजी ने प्रसन्न होकर उसे अपना पुत्र बना लिया, पार्वतीजी भी उस पर पुत्रवत् स्नेह रखने लगीं। शिवजी ने वाणासुर को शोणित पुर का राज्य दे दिया और अपने गणों के साथ वे उसकी रक्षा करने लगे। शिवजी से रक्षित होकर वाणासुर ने देव, दानव आदि सभी को जीत लिया। कोई उसके सामने ठहर न सका। इससे उसे बड़ा अभिमान हो गया। मदोन्मत्त होकर उसने एक दिन शिवजी से कहा कि आपकी दी हुई मेरी ये हज़ार भुजाएँ व्यर्थ हैं, मेरा पराक्रम बेकार है, युद्ध की मेरी लालसा पूरी नहीं होने पाती,

आप ऐसा कुछ कीजिए कि मैं जीभरकर युद्ध कर सकूँ। इस बात को सुन शिवजी ने मुस्करा कर उससे कहा कि जब तेरी ध्वजा टूट कर आप-से-आप गिर पड़ेगी तभी तुझे एक ऐसा वीर मिलेगा, जो युद्ध की तेरी भूख को पूरी तरह से शान्त कर देगा। शिवजी के वचन सुन कर बाणासुर ऐसा प्रसन्न हुआ मानो उसे तीनों लोक का राज्य प्राप्त होगया हो। किन्तु जब उसके मंत्री को उसकी खुशी का असली हाल मालूम हुआ तो वह बहुत चिंतित हुआ। उसने बाणासुर से कहा कि आपने शिवजी से ऐसा कह कर अच्छा नहीं किया। किन्तु अपने पराक्रम के मद में चूर बाणासुर ने मंत्री की बात सुनी-अनसुनी कर दी। कुछ समय बाद बाणासुर की ध्वजा आप-से-आप टूट कर गिर पड़ी। उसी समय अनेक प्रकार के अपशकुन और अप्राकृतिक उत्पात होने आरम्भ हुए। किन्तु बाणासुर तो इस बात से फूला न समाता था कि अब शीघ्र मुझे मनभरकर युद्ध करने का अवसर प्राप्त होगा।

'बाणासुर के उषा नाम की एक परम सुन्दरी कन्या हुई। पार्वती जी उसे बहुत चाहने लगीं। उषा प्रायः ही शिव-पार्वती जी के साथ रहती। धीरे-धीरे वह बड़ी हुई। एक बार पार्वती जी को शिव के साथ विहार करते देख उसके मन में भी उसी तरह पति के

साथ विहार करने की इच्छा उत्पन्न हुई। उसके मन की बात जान कर पार्वती जी ने उससे कहा कि शीघ्र ही स्वप्न में तुम्हें एक दिव्य पति प्राप्त होगा; तुम इसी प्रकार उससे विहार कर खूब सुख प्राप्त करोगी। यह कह कर उन्होंने उषा को विदा कर दिया। अपने महलों में आकर पति और विहार की चिन्ता से उषा व्याकुल रहने लगी। उसका खाना, पीना, सोना, हँसना छूट गया। उसकी यह दशा देख उसकी माता को तथा उसकी सखी-सहेलियों को बड़ी चिंता हुई। अनेक प्रकार के उपचार किये गये किन्तु उनसे कोई लाभ न हुआ। अन्त में एक दिन उषा ने स्वप्न में देखा कि एक अत्यन्त सुन्दर, तेजस्वी युवा पुरुष उसके साथ विहार कर रहा है। यह देख कर वह सहसा चौंक पड़ी और विलाप करने लगी। उसकी सखियां बहुत घबराईं। बड़ी कठिनाई से सब के समझाने-बुझाने से कुछ शान्त हो उसने सिसकते हुए सब हाल बतला कर कहा कि बिना विवाह के ही मैं दूषित हो चुकी हूँ। मेरे कारण कुल में कलंक लगेगा, अब मैं कैसे माता-पिता को मुँह दिखा सकूँगी। यह कह विकल हो, वह फिर विलाप करने लगी। उसकी सखियों ने समझाते हुए कहा कि स्वप्न में किये गये कर्म से तुम दूषित नहीं हो सकती हो, फिर तुमने अपनी इच्छा से तो कुछ

किया नहीं, इसमें तुम्हारा दोष ही क्या है। किन्तु उषा शान्त न हो सकी। तब उसकी सबसे प्रिय सखी चित्रलेखा ने उसे समझाया कि पार्वती जी ने तुम्हें वरदान दिया था कि देवों की तरह विहार करने वाला पति तुम्हें स्वप्न में मिलेगा; पार्वती जी का वही वरदान आज सफल हुआ है, इसमें सोच की बात ही क्या है। चित्रलेखा के वचनों से उषा का सोच दूर हो गया। उसने चित्रलेखा से विनय-पूर्वक कहा कि तुम किसी तरह से मेरे प्रियतम को मुझ से मिलाओ। चित्रलेखा बड़े असमंजस में पड़ गई। अन्त में उसने सभी प्रसिद्ध-प्रसिद्ध देवों, दानवों, सिद्धों, गन्धर्वों, नागों, राजाओं आदि के चित्र बना-बनाकर उषा को दिखाने प्रारम्भ किये। प्रद्युम्न के पुत्र अनिरुद्ध को देखकर उषा ने कहा कि इन्हीं ने मेरा चित्त चुराया है; तुम किसी तरह इन्हें मेरे पास ले आओ। चित्रलेखा ने कहा कि ये श्रीकृष्णजी के पुत्र के पुत्र हैं, इनका लाना सरल नहीं है, जैसे तुम्हारे पिता के इस नगर में बिना आज्ञा के कोई नहीं आ-जा सकता, वही हाल द्वारका का भी है। उषा ने कहा कि मैं बिना इनके जीवित ही नहीं रह सकती। अन्त में उसके बहुत अनुनय-विनय करने पर चित्रलेखा अनिरुद्ध को लाने के लिए राजी होगई।

'चित्रलेखा नामक एक अप्सरा थी। एक बार

पार्वतीजी के साथ शिवजी जल-विहार कर रहे थे। चित्र-लेखा, मेनका आदि सब अप्सराएँ भी उस जल-विहार में सम्मिलित थीं। शिवजी के रूप पर आसक्त होकर चित्रलेखा अनुचित-रूप से उन्हें अपनी ओर आकर्षित करने लगी। इस पर क्रोधित हो शिवजी ने उसे शाप दिया कि तू पृथ्वी पर जन्म ले। उसी शाप के कारण वह अप्सरा शोणितपुर में जन्म लेकर चित्रलेखा नाम से उषा के पास रहती थी। पार्वतीजी की कृपा से उसे योग-शक्ति और आकाश-मार्ग से चलने तथा रूप बदलने की शक्ति प्राप्त थी। उषा से विदा होकर वह द्वारका गई। द्वारका के बाहर उसे नारदजी मिले। उसने उन्हें प्रणाम कर सब हाल बतलाया। नारदजी ने उसे तामसी-विद्या देकर द्वारका में अनिरुद्ध के महल के भीतर भेजा। अदृश्य हो चित्रलेखा ने अनिरुद्ध के महलों में जाकर देखा कि वे अनेक अलौकिक सुन्दरी स्त्रियों के बीच में बैठे हुए हैं। वे स्त्रियाँ नृत्य, गान, क्रीड़ा, हाव-भाव आदि से उन्हें प्रसन्न करना चाहती हैं, किन्तु कोई भी उन्हें प्रसन्न नहीं कर सकी। यह देख चित्रलेखा ने आसुरी-विद्या से उन सभी स्त्रियों को मोहित कर, अनिरुद्ध के सामने प्रकट हो उषा का सब हाल बतलाया। पार्वतीजी की कृपा से अनि-रुद्ध ने ठीक वही स्वप्न देखा था जो उषा ने, और वे

उषा के ऊपर आसक्त होने के कारण उदास रहने लगे थे। उषा का सन्देश पाकर वे तुरन्त चित्रलेखा के साथ चल पड़े, और शीघ्र ही उषा के महलों में जा पहुँचे। उनकी मोहिनी मूर्ति देख उषा उन पर अपने प्राण निछावर करने लगी। चित्रलेखा के कहने से दोनों ने गन्धर्व विवाह कर बिहार करना प्रारम्भ किया।

'उषा-अनिरुद्ध का विहार गुप्त न रह सका। पहरेदारों ने जाकर बाणासुर को खबर दी। बाणासुर ने इसमें अपने कुल का अपमान समझ अनिरुद्ध को मारने के लिए सेना सहित अपने वीरों को भेजा। किन्तु अनिरुद्ध ने एक-एक करके सबको काट डाला। इससे बाणासुर को बड़ा क्रोध आया। वह स्वयं एक बड़ी भारी सेना लेकर उषा के महलों पर चढ़ दौड़ा। अनिरुद्ध ने अपने पराक्रम से उसके छक्के छुड़ा दिये, उसके देखते-देखते उसकी बहुत-सी सेना काट डाली। अन्त में आसुरी-माया रचकर बाणासुर ने उन्हें नागपाश में बांध लिया, और उन्हें मार डालना चाहा। किन्तु उसके मंत्री ने उसे समझाया कि ऐसे वीर पुरुष का इस प्रकार मारना उचित नहीं होगा; दूसरे अनिरुद्ध के मारे जाने पर कृष्णजी सर्वनाश किए बिना न मानेंगे। मंत्री की सलाह मानकर बाणासुर ने उन्हें नागपाश में बाँधकर कारागार

में डाल दिया। उनकी यह दशा देख उषा बहुत दुःखी हुई। तब अनिरुद्ध ने कोटवती देवी की स्तुति और आराधना की। देवी ने उन्हें नागपाश से मुक्त कर दिया और वर दिया कि तुम अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करोगे।

'इधर अनिरुद्ध के चले आने पर द्वारका में बड़ा हाहाकार मचा। उनकी बहुत खोज की गई, किन्तु उनका कहीं पता न लगा। सब को बड़ा दुःख हुआ। अन्त में, नारदजी ने वहाँ जाकर सब हाल बतलाया और श्रीकृष्णजी से कहा कि आप तुरन्त शोणितपुर जाइये, नहीं तो बाणासुर उन्हें जीवित न छोड़ेगा। समाचार पाकर बलराम, प्रद्युम्न तथा एक बड़ी सेना के साथ कृष्णजी शोणितपुर के लिए चल पड़े। शीघ्रता के लिए कृष्णजी ने गरुड़ की बड़ी स्तुति और प्रशंसा की। गरुड़जी ने कृष्णजी की स्तुति कर कहा कि मैं बात-की-बात में आपको शोणितपुर पहुँचा दूँगा। यह कह वे बड़े वेग से चले। शोणितपुर के पास पहुँचने पर कृष्ण-बलराम को बाणासुर की रक्षा के निमित्त नियुक्त किये गये शिव के गणों ने तथा अग्निदेव ने आगे बढ़ने से रोका। कृष्ण-बलराम ने युद्ध कर उन्हें मार भगाया। तब शिवजी का भेजा हुआ भीषण ज्वर आगे आया। उसने बलरामजी को परास्त कर दिया और कृष्णजी के भी शरीर में उसने प्रवेश किया। यह

देख कृष्णजी ने अपने वैष्णवी ज्वर के द्वारा उसे अपने शरीर से निकाल बाहर किया और चक्र से उसे नष्ट कर डालना चाहा। अपनी मृत्यु देख ज्वर दीनता से पुकार करता हुआ श्रीकृष्णजी की शरण में गया। श्रीकृष्णजी ने इस शर्त पर उसे छोड़ दिया कि तू मेरे भक्तों को सताना छोड़ दे। उन्हें प्रणाम कर ज्वर चला गया।

'ज्वर तथा अपने गणों को परास्त होते देख स्वयं शिवजी आगे आये। कृष्णजी हँसकर उनसे युद्ध करने लगे। भीषण अस्त्रों-शस्त्रों का प्रयोग हुआ। तीनों लोक विध्वंस होने के भय से काँप उठे। पृथ्वी ब्रह्माजी की शरण में गई। उसकी रक्षा के विचार से ब्रह्माजी ने शिवजी को समझाया कि आप और कृष्णजी एक ही रूप हैं, दानवों की रक्षा के निमित्त आपका कृष्णजी से लड़ना उचित नहीं है। शिवजी ब्रह्माजी के समझाने से युद्धक्षेत्र से हट गये। इस युद्ध को देखने के लिए नारद, मार्कण्डेय आदि महर्षिगण आए थे। मार्कण्डेयजी ने सब को समझाया कि शिव, कृष्ण और ब्रह्मा एक ही हैं, तीनों में कुछ भी भेद नहीं है। यह कहकर उन्होंने रुद्र और विष्णु का स्तोत्र सुनाकर सब को कृतकृत्य किया।

'शिवजी के युद्ध से हट जाने पर दानवी-सेना का तेजी से संहार होने लगा। यह देख स्वामिकार्त्तिक आगे

बढ़ कर भीषण युद्ध करने लगे। उन्होंने बहुत-सी यादवी सेना को काटडाला और अनेक दिव्य अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग कर प्रद्युम्न आदि को विकल कर डाला। अन्त में उन्हों ने कृष्णजी को मारने के लिए अमोघ शक्ति छोड़ी। कृष्ण जी ने अपने अस्त्रों द्वारा उसे शान्तकर दिया और स्वामिकार्तिक को मारने के लिए चक्र सम्भाला। पुत्र पर संकट देख पार्वती जी कोटिवीलम्बमाना रूप में प्रकट हुईं और श्रीकृष्ण जी को चक्र चलाने से रोका। श्री कृष्णजी ने उनके कहने से चक्र रख दिया। श्रीकृष्ण जी के कहने से देवी भी कुमार को समझा-बुझाकर युद्ध से अलग हटा ले गईं।

'कुमार के चले जाने पर बाणासुर को बड़ा क्रोध आया। वह बड़ी भारी सेना लेकर सामने आया और भीषण युद्ध करने लगा। श्रीकृष्ण जी सम्भलकर युद्ध करने लगे। बाणासुर ने बड़ा पराक्रम दिखाया, अनेक दिव्य अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग किया। किन्तु श्रीकृष्ण जी ने उसके सभी प्रयत्न और सभी अस्त्र-शस्त्र विफल कर दिये। गरुड़ जी ने उनके वाहन को नष्ट कर डाला। उसे संकट में देख शिवजी ने नन्दीश्वर को और अपने रथ को उसके पास भेज दिया। उस रथ पर सवार होकर बाणासुर ने बड़ा प्रचंड युद्ध किया। अन्त में श्रीकृष्ण जी ने

उसे मारने के लिए सुदर्शन चक्र सम्भाला। बाणासुर के प्राणों पर संकट देख शिवजी ने देवी को उसकी रक्षा के लिए भेजा। देवी ने श्रीकृष्णजी से प्रार्थना की कि आप इसको न मारिये। श्रीकृष्णजी ने देवी के कहने से बाणासुर के प्राण न लिए किन्तु सुदर्शन चक्र से, दो हाथों को छोड़ कर, उसके और सब हाथों को काट डाला। बाणासुर का अभिमान दूर हो गया। उसकी रण-लालसा पूरी होगई। शिव-पार्वती की कृपा से किसी तरह उसके प्राण बच गए। नन्दीश्वर के कहने से बाणासुर ने शिव जी के सामने नाचकर उन्हें प्रसन्न कर लिया। शिवजी ने उसे अमर, अजर कर दिया, उसके घावों की पीड़ा दूर कर दी, शरीर सुन्दर बना दिया और उसे महाकाल का पद प्रदान किया। इस प्रकार वर दे शिवजी कैलाश को चले गए।

'शत्रु पर विजय प्राप्त कर नारद के साथ कृष्णजी शोणित पुर में गये और अनिरुद्ध को कैदखाने से निकाला। बाणासुर के मंत्री ने विधिपूर्वक उषा का विवाह अनिरुद्ध से कर दिया। कुंभांड मंत्री ने विवाह के अवसर पर ऐसा दहेज दिया कि सब आश्चर्य करने लगे। फिर उसने श्रीकृष्णजी से कहा कि वरुण के पास बाणासुर ने अपनी बहुत-सी अपूर्व गौएँ रखदी हैं, उनका दूध अमृत के समान है, आप उन्हें ग्रहण कीजिए। श्रीकृष्ण ने

प्रसन्न होकर उसकी बात मान ली। फिर उन्होंने मंत्री कुंभांड को वहाँ का राज्य देकर कहा कि बाणासुर के शिव लोक को चले जाने के कारण अब तुम्हीं इस राज्य के अधिकारी हो। तुम मेरे भक्त हो, यहाँ धर्म और न्याय पूर्वक राज्य करो। इस प्रकार उसे राज्य देकर कृष्णजी सब के साथ वर-वधू को लेकर द्वारका गए। रास्ते में वर-वधू को द्वारका भेज श्रीकृष्णजी बलदेवजी तथा कुछ यदुवंशियों को लेकर वरुण-लोक को गये और वरुण से बाणासुर की गौओं को माँगा, किन्तु वरुण राजी न हुए। वे अपनी असंख्य सेना लेकर कृष्णजी से युद्ध करने के लिए निकले। घन घोर संग्राम छिड़ गया। वरुण अपनी सारी शक्ति, समस्त रण-कौशल, अखिल पराक्रम, सभी दिव्य अस्त्र-शस्त्र काम में लाये, कृष्ण जी को परास्त करने के लिए कोई बात उन्होंने उठा न रक्खी। किन्तु उनकी एक चली। वैष्णवास्त्र के सामने उनके सभी आयुध व्यर्थ हो गए। वैष्णवास्त्र के कारण अपने प्राणों पर संकट देख, वे स्तुति करते हुए कृष्णजी की शरण में गए। कृष्ण जी ने हँस कर उनके अपराध क्षमा कर दिये और उन्हें गले से लगा कर अपने पास बैठाला। फिर उन्हें अभय देकर उनसे बाणासुर की गौओं को माँगा। वरुण ने उत्तर दिया कि मैं बाणासुर से प्रतिज्ञा कर चुका हूँ कि उन गौओं को

किसी दूसरे के हाथ में न दूँगा, इस कारण जीवित रहते मैं उन्हें आपको देकर प्रतिज्ञा भंग नहीं कर सकता, आप मुझे मार कर भले ही उन्हें ले लें। कृष्णजी ने हँस कर कहा कि आपका अनिष्ट कर मैं उन गौओं को नहीं लेना चाहता, आप मुझसे ज्येष्ठ हैं, उन गौओं को आप ही अपने पास रखिये। यह कहकर तथा वरुण देव से पूजा-भेंट ग्रहण कर श्रीकृष्ण-बलराम जी द्वारका को लौट आये। यदुवंशियों ने उनका बड़े समारोह से स्वागत किया। कृष्णजी के साथ देवगण, सिद्ध, महर्षि आदि भी द्वारका आये थे। उग्रसेन आदि ने उनकी पूजा बड़े भक्ति-भाव से की। सब प्रसन्न हो कर आशीर्वाद देने लगे।

द्वारका में खूब उत्सव मनाया गया। उषा और अनिरुद्ध का विधि पूर्वक विवाह किया गया। कुंभांड मंत्री की कन्या रामा का विवाह साम्ब के साथ कर दिया गया। शोणितपुर से और भी बहुत सी दानव-कुमारियाँ द्वारका में आई थीं, उन्हें अन्य यदुवंशी राजकुमारों ने यथा-योग्य ग्रहण किया। द्वारका मंगलोत्सव हो परिपूर्ण हो गई।

विष्णु-पर्व समाप्त

हरिवंश-पुराण

भविष्य-पर्व

अध्याय—१

जनमेजय का वंश

शौनक जी ने जनमेजय के वंश की कथा पूछी। सूत जी बोले—'महाराज परीक्षित के पुत्र जनमेजय हुए और जनमेजय के चन्द्रा-पीड एवं सूर्यापीड नामक दो पुत्र हुए। चन्द्रापीड के सौ प्रतापी पुत्र हुए, जिनका वंश जनमेजय के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसी वंश में सत्य-कर्ण बड़ा प्रतापी हुआ जिसने वाराणसी का राज्य किया। सत्यकर्ण के पुत्र श्वेतकर्ण हुए। श्वेतकर्ण के जब बहुत दिनों तक कोई पुत्र न हुआ तो उदास होकर वे वन में चले गए। उनकी रानी मालनी भी उनके पीछे-पीछे गई। रास्ते में उसके एक पुत्र हुआ जिसे पति के शोक में उसने रास्ते में ही छोड़ दिया। पिप्लाद्य और कौशिक नामक ऋषियों ने उस बालक की रक्षा की और वेमक नामक ऋषि की स्त्री के द्वारा उसका लालन-पालन

कराया। बड़े होने पर वह बालक अजयाश्व नाम से विख्यात हुआ। अजयाश्व ने अपना पालन करनेवाले ब्राह्मणों को अपना मंत्री बनाकर धर्म-पूर्वक राज्य किया।

अध्याय २-६

जनमेजय-व्यास संवाद, राजसूय-यज्ञ से संग्राम, यज्ञ में विघ्न

शौनकजी ने पूछा कि सर्पयज्ञ के अनन्तर राजा जनमेजय ने क्या किया। सूतजी बोले—'सर्पयज्ञ के बाद महाराज जनमेजय ने अश्वमेध-यज्ञ करने का विचार किया। गुरु, आचार्य आदि को बुलाकर सब तैयारी करने की आज्ञा दी। उसी समय व्यासजी राजा के पास आए। राजा ने विधिपूर्वक उनकी पूजा की और उन्हें सिंहासन पर बैठाला। उनसे अनेक प्रकार की कथाओं को सुनने के अनन्तर जनमेजय ने नम्रता-पूर्वक व्यासजी से कहा—'मैं समझता हूँ कि कुरुवंश के नाश का कारण राजसूय-यज्ञ है। जब-जब राजसूय-यज्ञ हुआ है तब-तब उसके पीछे भीषण संग्राम हुआ है। पूर्व काल में सोमदेव ने राजसूय-यज्ञ किया था। उसी के अन्त में तारकामय नामक महान युद्ध हुआ था। फिर उसके बाद वरुण जी ने राजसूय यज्ञ किया, जिसके बाद ही सर्वभूत-क्षयकारी देवासुर-संग्राम हुआ था। उसके अनन्तर हरिश्चन्द्र ने राजसूय-यज्ञ किया

था, जिसके अन्त में महा भयंकर क्षत्रिय-विनाशी अडीवक नामक घोर संग्राम हुआ था। इधर हमारे पूर्व पुरुष पाण्डवों ने राजसूय-यज्ञ किया था, जिसके फल स्वरूप महानाश-कारी महाभारत का युद्ध हुआ। आप इस बात को जानते थे, किन्तु आपने भी न जाने क्यों पाण्डवों को उस समय राजसूय-यज्ञ करने से न रोका ?'

व्यासजी ने उत्तर दिया—'पाण्डवों ने उस समय मुझसे इस प्रकार की कोई बात नहीं पूछी थी और बिना पूछे मैं कोई बात कहना भी नहीं चाहता था। और फिर काल की गति को कोई रोक नहीं सकता। ज्ञान, पौरुष, उद्योग यह सब काल के सामने व्यर्थ हो जाते हैं। काल की गति दुरतिक्रम है। क्षत्रियों के लिए अश्वमेध-यज्ञ श्रेष्ठ बत-लाया गया है, किन्तु तुम्हारे अश्वमेध-यज्ञ में इन्द्र के द्वारा विघ्न पड़ेगा। उसी समय ब्राह्मणों और अग्नि के शाप से अश्वमेध होना बन्द हो जायगा। इसमें न इन्द्र का दोष होगा, न तुम्हारा और न ब्राह्मणों का ही। काल की ऐसी ही व्यवस्था है। कलियुग में काश्यप गोत्र का एक सेनापति होगा जो अश्वमेध-यज्ञ को फिर से प्रारम्भ करेगा। युगान्त प्राप्त है। काल की गति से कलियुग का प्रभाव बढ़ेगा। धर्म, सदाचार, नीति, वर्णाश्रमधर्म का लोप हो जायगा। राजागण प्रजा के भक्षक हो जायँगे

सभी पर-धन, पर-दारा में प्रवृत्त होंगे। स्त्रियाँ अपने शरीर को बेचती फिरेंगी। पुरुष दुष्ट प्रकृति के और अल्प शक्ति वाले होंगे। संन्यासियों और विधवाओं के संसर्ग से पुत्र उत्पन्न होंगे। वेदों, शास्त्रों का ज्ञान लुप्त हो जायगा, किन्तु सभी अपने को सर्व-शास्त्र-ज्ञाता मानेंगे। ब्राह्मण मूर्ख और आचारहीन होंगे और अभक्ष्य का भक्षण करते हुए धर्म को बेचेंगे। प्रजा गुणहीन, आयुहीन, शक्तिहीन हो जायगी। व्याधियाँ बढ़ेंगी। नाना प्रकार से पीड़ित होने पर लोगों में दैन्य, उदासीनता, पश्चात्ताप, निर्वेद की वृद्धि होगी। तब वे अधर्म को छोड़कर धर्म की ओर झुकेंगे और धीरे-धीरे अधर्म का ह्रास और धर्म की वृद्धि होगी। तब कलियुग का अन्त और सत्ययुग का प्रारम्भ होगा।'

'इस प्रकार अपनी अमृतमय वाणी से सब को तृप्त कर व्यासदेवजी वहाँ से चले गए। जनमेजय भी आस्तीक ऋषि के कारण तक्षक को अभय दे हस्तिनापुर को गए।'

'यथा समय काशी के राजा की पुत्री वपुष्टमा से जनमेजय का विवाह हुआ। कुछ समय बाद जनमेजय ने अश्वमेध-यज्ञ प्रारम्भ किया। यज्ञ का अश्व सफलता-पूर्वक लौटा। ऋषियों ने विधिपूर्वक उसे मारा। मृतक अश्व के पास रानी वपुष्टमा गई। रानी के सौन्दर्य पर इन्द्र रीझ गए थे। उन्होंने अश्व के शरीर में प्रवेश कर

रानी के साथ समागम किया। जब राजा को इस घोर कर्म का पता चला तो उन्होंने इन्द्र को शाप दिया कि आज से न तो कोई अश्वमेध यज्ञ ही करेगा और न तुम्हारी पूजा ही। फिर यह कहकर कि तुम्हारी ही दुर्बलता के कारण यज्ञ में विघ्न पड़ा है राजा ने यज्ञ करने वाले सभी ब्राह्मणों को अपने देश से निकाल दिया। अन्त में जनमेजय ने अनेक दुर्वचन कह वपुष्टमा को देश-निकाले की आज्ञा दी। उसी समय गन्धर्वों के राजा विश्वावसु ने राजा के पास आकर अनेक प्रकार से समझाते हुए कहा—'आप तीन सौ यज्ञ कर तेज और प्रताप में इन्द्र से भी बढ़ गए हैं। इस कारण इन्द्र आप से भयभीत हो गया है। यज्ञ में विघ्न डालने के विचार से उसने पहले ही रम्भा नामक अप्सरा को वपुष्टमा के रूप में पृथ्वी पर भेजा था। इन्द्र ने यज्ञ के अवसर पर अपनी उसी अप्सरा रम्भा से ही समागम किया था। वपुष्टमा निर्दोष और शुद्ध है। वह अपनी इच्छा से आपको छोड़कर और दूसरे किसी पुरुष की ओर देखती तक नहीं है। आप क्रोध और दैन्य को छोड़कर धर्मपूर्वक प्रजा का पालन कीजिए और वपुष्टमा को पहले ही की तरह निर्दोष मान कर उससे विहार कीजिए। काल की गति को कोई नहीं टाल सकता। जो हुआ है उसे आप अवश्यम्भावी समझ

कर संतोष कीजिए।' विश्वावसु के समझाने से जनमेजय शान्त हुए। सब को क्षमा कर वे रानी वपुष्टमा से विहार करते हुए धर्मपूर्वक राज्य करने लगे।

अध्याय ७-२६

पुष्कर-प्रादुर्भाव एवं सृष्टि क्रम, मार्कण्डेय का प्रलय काल मे विचरण, ब्रह्मा का यज्ञ, तप, देवताओ के अस्त्र-शस्त्र

जनमेजय ने भगवान के शयन का समय और सृष्टि के विषय में प्रश्न किया। वैशम्पायन जी बोले—'जो परम पुरुष सब का आदि कारण हैं वही सब में व्याप्त होकर संसार का व्यवहार चलाते हैं। वे ही प्रलय के समय सूर्य और अग्नि का रूप धारण कर सृष्टि को भस्म कर डालते हैं और फिर मेघरूप होकर सारे जगत को जलमय कर देते हैं। इसके अनन्तर सबको अपने में लय कर वे ही नारायण-देव योग-निद्रा के वशीभूत हो शयन करते हैं। उस समय किसी का भी अस्तित्व नहीं रहता, इस कारण उसका वर्णन कोई नहीं कर सकता। महर्षियों का कहना है कि एक बार भगवान के शयन करते समय मार्कण्डेय जी उनके मुख से बाहर निकल आए। उन्होंने भगवान को शयन करते देखा था। बहुत काल तक जल के उस महासागर में घूमते रहने के बाद वे फिर भगवान के मुख

में समा गए। इसके अनन्तर वे फिर एक बार बाहर आए। तब उस महासमुद्र के बीच एक वट-वृक्ष के पत्ते पर अलौकिक सुन्दर दिव्य कान्ति वाले बालक के रूप में भगवान के उन्होंने दर्शन किये। मार्कण्डेय के आश्चर्य चकित होने पर भगवान ने उन्हें बतलाया कि मेरी ही विभूति से यह सारी सृष्टि उत्पन्न होती है, और मैं सभी पदार्थों में व्याप्त रहता हूँ। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, चन्द्रमा, यम, वरुण, कुबेर, अग्नि, वायु आदि मेरे ही अंश से उत्पन्न होते और मेरे ही प्रभाव से अपना-अपना कार्य करते हैं। यह ज्ञान प्राप्त कर मार्कण्डेय जी उन्हीं सर्वनियन्ता हरि के उदर में प्रविष्ट हो गए।

'योग-निद्रा के अनन्तर भगवान ने सृष्टि की रचना की इच्छा की। उसी इच्छा के फल स्वरूप उनकी नाभि से एक कमल उत्पन्न हुआ। उससे ब्रह्माजी की उत्पत्ति हुई। ब्रह्माजी ने भगवान के प्रभाव से सृष्टि की रचना की। उस कमल के भिन्न-भिन्न अंशों से स्वर्ग, पाताल आदि चौदहों लोकों की, पृथ्वी, पर्वत आदि सभी की उत्पत्ति हुई। सृष्टि के इसी क्रम को महापुष्कर-सम्भव कहा गया है। ब्रह्माजी के उत्पन्न होने के अनन्तर तम के रूप में मधुदानव की और रजोगुण के रूप में कैटभ नामक दैत्य की उत्पत्ति हुई। वे दोनो अपने भार से विश्व को हिलाते

हुए चारो ओर दौड़ने लगे। उनसे सारा संसार आच्छादित हो गया। कमल पर ब्रह्माजी को स्थित देख दोनों ने उन्हें युद्ध के लिए ललकारा। ब्रह्माजी ने कहा कि मुझे और सारी सृष्टि को उत्पन्न करने वाला सतोगुण स्वरूप सर्वनियंता परम पुरुष ही तुम्हें युद्ध से संतुष्ट कर सकेगा। ब्रह्मा जी के कहने से मधुकैटभ भगवान को पुकारने लगे। भगवान ने उन्हें यह वर देकर कि कल्पान्त में तुम हमारे पुत्र होगे, उन दोनों का अपनी जंघाओं से मन्थन किया। इसके अनंतर ब्रह्मा जी ने यज्ञ, आचार आदि को, प्रजापतियों, सप्त-ऋषियों को उत्पन्न किया। इस प्रकार क्रम से ब्रह्माजी ने तीनों लोकों को नाना प्रकार के प्राणियों से व्याप्त कर दिया। परम पुरुष परमात्मा सभी में व्याप्त हैं। उन्हीं के चिन्तन से प्राणी योग और ज्ञान को प्राप्त कर ब्रह्मगति का अधिकारी होता है। ब्रह्म-गति प्राप्त होने पर सब आवागमन के बन्धन से छूट जाते हैं। विभिन्न कर्म करने से मनुष्यों को विभिन्न फलों की प्राप्ति होती है, किन्तु सब कर्मों के फलों को त्याग, निरंतर योग-निष्ठ हो, परमपुरुष की आराधना करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

'ब्रह्माजी ने सृष्टि के आदि में अपने विभिन्न अंगों से भिन्न-भिन्न प्राणियों की उत्पत्ति की और उन्हें भिन्न-

भिन्न कार्यों का भार सौंपा। विभिन्न कार्यों के सम्पादन के निमित्त उन्होंने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, इन चार वर्णों की व्यवस्था की। बल की प्रबलता के कारण और प्रजा की रक्षा के निमित्त ही क्षत्रियों का प्रादुर्भाव हुआ। निस्पृह होकर शिलोंच्छ वृत्ति धारण कर, वासना-रहित हो जो शरीर त्याग करते हैं, उन्हें परमगति प्राप्त होती है।

'सृष्टि के उत्पन्न होने पर ब्रह्माजी ने लोक-कल्याण के निमित्त सब सामग्री एकत्र कर सांगोपांग यज्ञ किया। सब देव, ऋषि आदि ने उसमें यथायोग्य भाग लिया। पुष्कर-क्षेत्र के इस यज्ञ से तीनों लोकों की तृप्ति हुई। उसी को आदर्श मान कर सभी यज्ञ तथा शुभ कर्मों में संलग्न हुए। कुछ काल बीतने पर मधुकैटभ के उपद्रव से पीड़ित होने पर ब्रह्माजी ने भगवान से रक्षा के निमित्त प्रार्थना की। उन तमोगुण और रजोगुण रूपी दानवों से घोर युद्ध कर भगवान ने उनका वध किया। उनके शरीर से निकली हुई मेद से पृथ्वी आच्छादित हो गई। तभी से उसका नाम मेदनी पड़ा। तमोगुण के प्रभाव से मुक्त होकर देवगण तथा ऋषि-मुनि तप और यज्ञ आदि शुभ कर्मों में लग गये। लोक-कल्याण के निमित्त पुष्कर-क्षेत्र के यज्ञ के अनन्तर भगवान की प्रेरणा से ब्रह्माजी ने विभिन्न देवताओं को उनके कार्य और पद के अनुरूप अमोघ,

दिव्य अस्त्र शस्त्र दिये। विष्णु को चक्र, इंद्र को वज्र, वरुण को पाश, काल को दण्ड, शिव को त्रिशूल, त्वष्टा को फरसा, देवी को खड्ग से सुशोभित किया। विश्वकर्मा और त्वष्टा ने और भी नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्र तैयार किये। वेद-की रीति के अनुसार त्वष्टा एवं विश्वकर्मा ने अनेक प्रकार के रथ, विमान आदि बनाये और रथों की सेना संगठित की। विष्णु भगवान ने अपने पुष्कर नामक विग्रह से सेना का संगठन किया। इंद्र ने भगवान के प्रभाव से आग्नेयास्त्र, ऐन्द्रास्त्र एवं रौद्रास्त्र नामक चार महान अस्त्रों का निर्माण किया। इस प्रकार अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होकर तथा सेना का सुसंगठन कर देवगण अजेय हो धर्मपूर्वक विचरने लगे। युद्ध में उनका सामना करने वाला कोई न रह गया। इस प्रकार अस्त्रों, शस्त्रों, रथों, सेना-संगठन आदि के द्वारा रक्षा की व्यवस्था करने के बाद वे सब ऋषि-मुनियों के साथ तप, व्रत, आदि सात्विक कृत्यों एवं मोक्ष के साधनों का अनुष्ठान करने लगे।'

अध्याय ३०-३२

समुद्र मंथन एवं देवासुर-संग्राम, वामन का बलि को छलना, दक्ष-यज्ञ-ध्वंस

वैशम्पायन जी बोले—'वैन्य राजा ने प्रजा-धर्म की

दीक्षा ली और वह ऋषियों के साथ धर्मपूर्वक प्रजा की रक्षा और उसका पालन करने लगा। इस प्रकार सुख से समय व्यतीत होने लगा। त्रेता के आरंभ में देवों और दानवों ने मिल कर अमृत की प्राप्ति के निमित्त प्रयत्न प्रारंभ किया। सब से सलाह ले विष्णु तथा ब्रह्मा को आगे कर उन्होंने समुद्र को मथा। उसमें से विष, मद्य, लक्ष्मी, कौस्तुभ मणि, चन्द्रमा, उच्चैःश्रवा, ऐरावत, धन्वन्तरि, अमृत आदि निकले। दानवों ने अपने प्रबल प्रताप से पहले सब रत्नों पर कब्जा कर लिया। यह देख विष्णु भगवान ने मोहनी रूप धारण कर छल-कौशल से देवों को अमृत पिला दिया। दानव अमृत से वंचित रह गये। उनका छल राहु नामक दानव समझ गया। देवगण का वेश बनाकर उसने धोखा दे अमृत पी लिया। चन्द्र-सूर्य ने विष्णु-भगवान से सब भेद बतला दिया। भगवान ने चक्र से उस दानव का सर काट डाला। किन्तु अमृत के प्रभाव से राहु और केतु के नाम से उसके सर और धड़ अमर होकर विख्यात हो गये। दानवों ने छल के कारण क्रोधित होकर युद्ध प्रारंभ किया। घोर देवासुर-संग्राम हुआ। विष्णु भगवान के पराक्रम और अमृत के प्रभाव से देवगण ने दानवों को मार कर तीनों लोकों का राज्य प्राप्त किया।

'कुछ समय के अनन्तर दानवेन्द्र बलि-गंगा-यमुना

के संगम पर एक बृहद् यज्ञ करने लगे। उनके यज्ञ में सब बड़े-बड़े ऋषि-मुनि आए। देवगण को संकट में देख विष्णु भगवान ने यज्ञके अवसर पर राजा बलि से तीन पग पृथ्वी माँगी। शुक्राचार्य जी के मना करने पर भी बलि ने वामन जी को तीन पग पृथ्वी का दान दिया। वामन जी ने विराट रूप धारण कर तीनों लोकों का राज्य नाप लिया, और उसे इन्द्र को दे दिया। राजा बलि राज्य-भ्रष्ट हो दैत्य-दानवों को लेकर पाताल लोक को चले गए। इन्द्र तीनों लोकों का राज्य करने लगे।

'पूर्व काल में दक्ष प्रजापति एक महायज्ञ करने लगे। उसमें शिवजी का भाग कल्पित नहीं किया गया था। इस कारण शिवजी ने दक्ष को ही बलि-पशु कल्पित किया और नन्दीश्वर तथा अपने अन्य गणों को लेकर यज्ञ को विध्वंस कर डाला। यह देख यज्ञ मृग का रूप बनाकर आकाश की ओर भागा। शिवजी ने उसे बाण से घायल किया। देवगण के प्रार्थना करने पर शिवजी से युद्ध करने के लिए विष्णु भगवान आए। दोनों में घोर युद्ध हुआ। अन्त में भगवान ने शिवजी के गले को अपने हाथ में पकड़ कर बड़े जोर से दबाया। तभी से शिवजी का गला नीला पड़ गया और तभी से उनका नाम नीलकंठ हो गया। शिवजी से युद्ध करने के अनन्तर भगवान ने यज्ञ

में शिवजी के भाग की कल्पना की। शिवजी प्रसन्न हो गए। प्रसन्न होकर शिवजी ने दक्ष को यज्ञ का फल प्रदान किया। दक्ष का यज्ञ सफल हुआ।'

अध्याय ३३–४०

वराह अवतार, रसातल-गत पृथ्वी का उद्धार एव हिरण्याक्ष का वध, देवगण को राज्य

जनमेजय ने वराह अवतार की कथा सुननी चाही। वैशम्पायनजी बोले—'योग-निद्रा के बाद भगवान ने अपनी नाभि से कमल को उत्पन्न किया और उससे ब्रह्मा जी उत्पन्न हुए। ब्रह्माजी ने भगवान के तेज को प्राप्त कर सृष्टि की रचना की। किन्तु भगवान के तेज को न सह सकने के कारण पृथ्वी रसातल को चली गई। इससे सभी प्राणियों को कष्ट होने लगा। उधर पृथ्वी ने भगवान से अपने उद्धार की प्रार्थना की। सब का संकट दूर करने के निमित्त भगवान ने वराह रूप धारण कर रसातल से अपने दाँत पर रखकर पृथ्वी का उद्धार किया; पृथ्वी को अपनी दाढ़ों पर उठाकर उसे जल के ऊपर स्थापित किया। फिर लोक-कल्याण के निमित्त पृथ्वी पर भारत, केतुमाल, भद्राश्व आदि देशों की; गंगा, नर्मदा आदि नदियों की; सुमेरु,

उदयाचल, हिमालय आदि पर्वतों की; नाना प्रकार के वृक्षों, वनस्पतियों की एवम् विविध रंग, रूप, आकार- प्रकार की वस्तुओं की कल्पना की। इसके अनन्तर सृष्टि की चिन्ता करते समय भगवान के मुख से एक दिव्य पुरुष प्रकट हुआ। भगवान उसे अपने शरीर को दो भागों में विभाजित कर सृष्टि रचने की आज्ञा दे, अन्तर्धान हो गए। वह पुरुष इस चिन्ता में पड़ गया कि मैं अपनी आत्मा को किस प्रकार विभाजित करूँ। इसी समय ओउम् शब्द का प्रादुर्भाव हुआ, जो चौबीस अक्षर वाली गायत्री के रूप में परिणत हो गया। इसके अनन्तर सनक, सनन्दन आदि बाल-ब्रह्मचारी एवं सप्तर्षि प्रकट हुए। इसके अनन्तर दक्ष प्रजापति और उनकी भार्या का प्रादुर्भाव हुआ, जिनकी साठ कन्याओं के पुत्र-पौत्रों से यह सारा संसार व्याप्त हो गया।

'इंद्र ने कुशों को धारण किया, इस कारण उनका नाम कौशिक पड़ा। ब्रह्माजी ने वज्रधारी इंद्र को तीनों लोक तथा देवगण का; चन्द्रमा को यज्ञ, तप, नक्षत्र, ब्राह्मण एवं औषधियों का; दक्ष को प्रजापतियों का; वरुण को जलों का; वायु को बल का; शिव को भूतों, रोगों, उत्पातों, व्रतों का; कुबेर को धन, रत्न, यक्षों का; सागर को नदियों का; चित्ररथ को गंधर्वों का; कामदेव को अप्सराओं का; राहु को उत्पातों एवं अशुभों का; अरुण को योगों का;

हिरण्याक्ष को दैत्य-दानवों का राजा बनाया।

'पंखों से उड़ने वाले पर्वतों से एक बार दैत्यों, दानवों ने स्वर्ग के सुख, ऐश्वर्य की बड़ाई सुनकर उसे प्राप्त करने की इच्छा की। उनकी लालसा देख उनके राजा हिरण्याक्ष ने स्वर्ग पर चढाई कर दी। देवगण ने इन्द्र को आगेकर भीषण युद्ध किया। किन्तु अन्त में दानवों की विकट मार के सामने वे ठहर न सके। देवगण के परास्त हो जाने पर हिरण्याक्ष ने तीनों लोकों पर अधिकार कर लिया। उसके अत्याचार से सब व्याकुल हो उठे। सब की पुकार सुनकर भगवान ने वराह अवतार लेकर हिरण्याक्ष से घोर युद्ध किया और उसकी दानवी माया, उसके अमोघ अस्त्र-शस्त्रों को विफल कर उसे मार डाला। देवगण को फिर स्वर्ग का राज्य प्राप्त हो गया। यज्ञ, तप, सात्विक कृत्य से लोक-कल्याण होने लगा। देवराज इंद्र ने पर्वतों के अपराध के कारण अपने वज्र से उनके पंख काट डाले। उस समय केवल एक मैनाक पर्वत भाग कर समुद्र में छिप गया इस कारण उसके पंख न काटे जा सके।'

अध्याय ४१–४७

हिरण्यकशिपु को अपूर्व वर, एवं नृसिंहजी का अवतार

वैशम्पायन जी बोले—'हिरण्याक्ष के मारे जाने पर

उसके भाई हिरण्यकशिपु ने घोर तप कर ब्रह्माण्ड को हिला दिया। विवश हो ब्रह्माजी वरदान देने के निमित्त उसके सामने प्रकट हुए। उनकी पूजा कर हिरण्यकशिपु ने कहा कि मुझे इन्द्र, वरुण, कुवेर, यम, वायु आदि की शक्ति और उनके अधिकार एवं वैभव प्राप्त हों; न मैं दिन में मरूँ, न रात में; न अन्दर न बाहर; सभी दिव्य अस्त्र-शस्त्र मुझे प्राप्त हो जायँ; मुझे कोई युद्ध में न जीत सके; मैं केवल उसीसे मरूँ जो मेरे सेवक, वाहन आदि के साथ मुझे एक हाथ के प्रहार से मारे। उसके तप से विवश होकर ब्रह्माजी को उसे मुँह माँगा वर देना पड़ा। वर पाकर वह दैत्यों को लेकर इन्द्र पर चढ़ दौड़ा और सबको हराकर तीनों लोकों का शासन करने लगा। उसके भय से सभी काँपने लगे। वह स्वर्ग की सभी अप्सराओं से विहार करने लगा, सभी दिव्य भोगों को भोगने लगा। अन्त में उसके साथी राक्षस अन्याय और अत्याचार करने लगे। सभी को पीड़ा पहुँचने लगी। हिरण्यकशिपु नें घमंड से पागल होकर सत्कर्म बन्द करा दिये। पाप और अधर्म से तीनों लोकों में त्राहि-त्राहि मच गई। सब को पीड़ित-त्रसित देख, सब की प्रार्थना पर भगवान ने अद्भुत, अलौकिक नृसिंह का रूप धारण किया। उन्हें देख दानवगण बहुत विस्मित हुए। नृसिंहजी ने जाकर हिरण्यकशिपु की दिव्य

सभा को तोड़ना प्रारंभ किया। दैत्य-दानव अपने अस्त्र-शस्त्र ले उन पर टूट पड़े। घोर युद्ध होने लगा। अपने आयुधों को विफल होते देख दानवगण माया-युद्ध करने लगे। किन्तु नृसिंह जी ने अपने प्रभाव से उनके सभी अस्त्र-शस्त्रों को विफल कर दिया, सबकी माया नष्ट कर दी और अधिकांश दानवों को काट डाला। यह देख हिरण्य-कशिपु स्वयं युद्ध करने चला। उस समय भयंकर उत्पात होने लगे, अपशकुनों से सबके हृदय दहल उठे। किन्तु हिरण्य-कशिपु निर्भय होकर युद्ध करने लगा। उसने एक-एक करके अपने सभी दिव्य अस्त्र-शस्त्र नृसिंहजी पर छोड़े, पर सभी विफल हुए। उसने बहुत माया रची, बड़े-बड़े कौशल किये, पर सभी प्रयत्न व्यर्थ गए। अन्त में संध्या समय, दिन और रात्रि के संधि-काल में महल की ड्योढ़ी पर भगवान ने नखों से उसका पेट फाड़कर उसे मार डाला। उसके मरते ही तीनों लोकों में आनन्द होने लगा। देवगण को फिर अपने-अपने अधिकार प्राप्त हो गये। सभी शुभ कर्म प्रारंभ होगये। सभी सुखी हो गये। ब्रह्माजी तथा देवगण ने भगवान की स्तुति-वन्दना की।

भगवान इन्द्र तथा देवगण को अपने-अपने पदों पर प्रतिष्ठित कर सबके देखते-देखते अन्तर्धान होगये।'

———

अध्याय ४८-७२

बलि को राज्य, देव दानव-संग्राम, वामनजी का बलि के
पास जाना और छलकर तीन पग में तीन लोक नापना

वैशम्पायनजी बोले—'देवगण के कारण हिरण्य कशिपु के मारे जाने पर दैत्यगण अपने अधिकारों से वञ्चित होकर बहुत दुःखी हुए। अन्त में उन्होंने सब बातों में योग्य नेता की आवश्यकता समझ शुक्राचार्य की सलाह से बलि को अपना राजा बनाया और उनसे हिरण्यकशिपु के खोये हुए ऐश्वर्य को देवगण से छीनने का आग्रह किया। राजा बलि ने शुक्राचार्य की सम्मति से अपनी दैत्य-सेना को अच्छी तरह से सुसंगठित और सुसज्जित किया। फिर उस प्रबल दैत्य-सेना को लेकर वे देवगण पर चढ़ दौड़े। इधर देवगण भी सब प्रकार से युद्ध की तैयारी कर रहे थे। बृहस्पति की सलाह से उन्होंने भी खूब संगठन कर लिया था। इन्द्र को आगे कर वे भी युद्ध भूमि में आये। दोनों सेनाओं में घोर युद्ध हुआ। दोनों ओर के वीरों ने बड़ी वीरता प्रदर्शित की, अपने-अपने दिव्य और अमोघ अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग किया, कपट-माया का आश्रय लेकर बड़ा भीषण संग्राम किया। किन्तु अन्त में दानवों ने अपने पराक्रम और युद्ध-कौशल से देवगण को हरा दिया। इन्द्र आकाशवाणी के मना करने पर युद्ध से हट गये। देवगण को परास्त कर राजा बलि ने दानवों का राज्य

तीनों लोकों में स्थापित कर दिया। दानव गण सभी प्रकार के स्वर्गीय सुखों का उपभोग करने लगे।

'देवगण संकट में पड़ गये। सबको लेकर इन्द्र अपने पिता कश्यपजी के पास गए। उनको दुःखी देख कश्यप-अदिति बहुत दुःखी हुए। फिर वे उन सबको लेकर ब्रह्माजी के पास गए। ब्रह्माजी ने उनसे कहा कि मैं तुम्हारे आने का प्रयोजन जानता हूँ। तुम लोग सब के नियंता परम पुरुष-परमात्मा को प्रसन्न करने के लिए तप, आराधना और स्तुति करो; वे ही तुम्हारे सब संकटों को दूर करेंगे। ब्रह्मा जी की आज्ञा से देवगण ने कश्यपजी को साथ लेकर भगवान को प्रसन्न करने के लिए उपाय किये। कश्यप जी के तप और स्तोत्र से प्रसन्न होकर भगवान ने उनसे वर मांगने के लिए कहा। कश्यप जी ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि आप इन्द्र के छोटे भाई के रूप में मेरे पुत्र होकर प्रकट हों और देवगण का संकट दूर करें। 'तथास्तु' कह कर भगवान ने उन्हें विदा किया।

'यथा समय भगवान अदिति के पुत्र के रूप में वामन होकर प्रकट हुए। वे केवल बावन अंगुल के थे इसलिए उनका नाम वामन-भगवान पड़ा। बालक रूप और नन्हें से होने पर भी वामन भगवान के अपूर्व अलौकिक तेज, प्रतिभा, बुद्धि, शक्ति, प्रताप, प्रभाव, कान्ति, पराक्रम आदि

स्पष्ट रूप से दृष्टि गोचर हो रहे थे। तब देवगण को लेकर ब्रह्माजी कश्यपजी के यहाँ आये और सबने वामन जी की विधि पूर्वक पूजा-स्तुति की। देवगण ने अपनी विपत्ति की कहानी सुना कर उनसे रक्षा करने की प्रार्थना की। भगवान ने उन्हें अभय देकर कहा कि मुझे राजा बलि के पास ले चलो। बृहस्पति जी उनको उस स्थान पर ले गए जहाँ राजा बलि बड़े समारोह से अश्वमेध यज्ञ कर रहे थे। यज्ञ-मण्डप में पहुँच कर वामनजी ने अपनी अलौकिक प्रतिभा और विभूति से वहाँ उपस्थित शुक्राचार्य आदि ऋषि, मुनि, पंडित, ज्ञानियों को चकित-स्तम्भित कर दिया। शुक्राचार्य आदि ने उनसे बड़ा शास्त्रार्थ किया, किन्तु वामन जी ने सबको परास्त कर निरुत्तर कर दिया। यह देख राजा बलि को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने विधि पूर्वक वामन जी की पूजा की और उनसे कहा कि तुम जो भी चाहो माँग लो। वामनजी ने उस यज्ञ की बहुत प्रशंसा की और राजा बलि से कहा कि मुझे धन, राज्य, ऐश्वर्य स्त्री, रत्न आदि किसी की भी कामना नहीं है, किन्तु जब तुम माँगने को कहते हो तो मैं तुमसे गुरु के प्रयोजन की सिद्धि के लिए तीन पग पृथ्वी चाहता हूँ। वामनजी के वचन सुनकर बलि ने कहा कि तुम यदि पृथ्वी ही चाहते हो तो मुझसे कोई राज्य ले लो, तीन पग पृथ्वी क्या

माँगते हो। किन्तु वामनजी अपने वचन पर दृढ़ रहे। जब बहुत कुछ कहने पर भी वे और कुछ भी लेने के लिए तैयार न हुए तो राजा बलि उन्हें तीन पग पृथ्वी ही सकल्प करने के लिए उद्यत हुए। यह देख शुक्राचार्यजी ने राजा को तीन पग पृथ्वी का दान करने से रोकते हुए कहा कि तुम इनके छल में मत पड़ो, ये वामन-रूपधारी विष्णु हैं, ये बालक का रूप धारण कर इन्द्र के हित के लिए छल द्वारा तुम्हें ठगने आए हैं। राजा बलि ने कहा कि यदि साक्षात विष्णु भगवान इस यज्ञ के अवसर पर मुझ से दान लेने आए हैं तो मैं अवश्य ही अपना सर्वस्व अर्पण कर इनकी इच्छा पूरी करूँगा, उनसे बढ़कर सुपात्र मुझे दूसरा कौन मिलेगा। यह कह बलि झारी से संकल्प के लिए जल डालने लगे। वामनजी ने शुभ चिह्नों से युक्त असुर-क्षयकारी अपने हाथ को फैलाया। प्रह्लादजी ने उस हाथ को देखकर बलि से कहा कि ये साक्षात् नारायण है, यदि तुम अपने राज्य की रक्षा चाहते हो तो पृथ्वी का संकल्प न करो। बलि ने कहा कि दान देने के लिए इनसे अच्छा पात्र दूसरा नहीं मिल सकता; मैं अपने संकल्प से विमुख नही होऊँगा। यह कहकर उन्होंने वामनजी को तीन पग पृथ्वी संकल्प करके दे दी। संकल्प होते ही वामनजी ने विराट रूप धारण कर लिया।

जिनका आकाश मस्तक, चन्द्र और सूर्य नेत्र, पृथ्वी चरण, पिशाच पैरों की अँगुलियाँ, गुह्यक हाथों की अँगुलियाँ, विश्वेदेवा जानु, साध्य और यक्ष नख, बिजली दृष्टि, सूर्य की किरणें केश, दिशाएँ कान, वायु नासिका, धर्म मन, सत्यवाणी, सरस्वती जिह्वा, स्वर्ग का द्वार नाभि, मित्र-त्वष्टा भृकुटियाँ, अग्नि मुख, दक्ष-प्रजापति वृषण, ब्रह्मा हृदय, कश्यपजी पुरुषत्व, वसु पृष्ठभाग, छन्द दाँत, समुद्र धैर्य और इन्द्र जिन विराट के तेज के रूप में प्रकट हुए।

'भगवान के इस विराट रूप को देखकर विप्र-चित्ती वृत्र, मय आदि दानव अपने-अपने अस्त्र-शस्त्र लेकर उन पर टूट पड़े। भगवान ने अपने पैरों से उन सबको रौंद डाला। इसके अनन्तर भगवान ने तीन पग में तीनों लोकों को नापकर उन्हें इन्द्र को दे डाला। फिर राजा बलि के ऊपर अनुग्रह कर उन्हें सुतल लोक का राज्य देकर उन्हें वहाँ वास करने के लिए भेज दिया। बलि को भगवान ने यह भी वरदान दिया कि मुझसे और मेरे भक्तों से बैर करनेवालों का पुण्य; पैसा लेकर अग्निहोत्र करने वालों का फल; श्रद्धा रहित दान, यज्ञ, तप आदि के पुण्य तुमको प्राप्त होते रहेंगे। राजा बलि के चले जाने पर भगवान ने इन्द्र को पूर्व दिशा का, धर्मराज को दक्षिण दिशा का, वरुण को पश्चिम दिशा का, कुबेर को उत्तर

दिशा का, शेष को नीचे के लोकों का और चन्द्रमा को ऊपर के लोकों का अधिपति बनाया। इस प्रकार तीनों लोकों की उचित व्यवस्था कर भगवान अन्तर्धान होगए।

'इधर राजा बलि सुतल लोक में पहुँचते ही नाग-पाश में बँध गए। उन्हें संकट में देख भगवान की इच्छा से नारद जी वहाँ गये और उन्हें नाग-पाश से मुक्ति दिलाने वाले दिव्य स्तोत्र को बतलाया। राजा बलि ने उस स्तोत्र का भक्तिपूर्वक पाठ किया। भगवान ने उन्हें नाग-पाश से मुक्त करने के लिए गरुड़ जी को भेजा। गरुड़ जी के वहाँ पहुँचते ही नागगण वहाँ से भाग कर अपनी भोगवती पुरी को चले गए। इस संकट से छूट कर राजा बलि सुख पूर्वक उस लोक में रहने लगे। वामन भगवान की कृपा से देवगण भी अपने-अपने अधिकारों का भोग करने लगे।

अध्याय ७३–६०

पुत्र-प्राप्ति के निमित्त कृष्णजी का कैलाश पर तप करने जाना. घण्टाकर्ण की कथा एवं मुक्ति, शिव कृष्ण स्तुति एवं महिमा

जनमेजय ने कृष्णजी की कैलाश यात्रा की कथा पूछी। वैशम्पयानजी बोले——'भगवान कृष्ण-रूप से सज्जनों पर अनुग्रह करते एवम् दुष्टों का नाश करते हुए यदुवंशियों के बीच द्वारका में लीला करने लगे। एक समय रुक्मिणीजी ने अपनी सेवा से उन्हें प्रसन्न कर कहा

कि आप मुझे अपने अनुरूप पुत्र दीजिए। भगवान ने प्रसन्न हो कर कहा---'तुम्हारी सेवा और भक्ति से मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ। मैं तुम्हें अवश्य ही अत्यन्त तेजस्वी, विद्वान, धार्मिक, माता-पिता की सेवा करने वाला पुत्र दूँगा। पुत्रसे बढ़कर संसार में दूसरा कोई प्रिय नहीं होता। नरक से और आपत्ति से पुत्र ही रक्षा करता है। गुणी पुत्र की प्राप्त के लिए शिवजी की आराधना करने के निमित्त मैं कैलाश पर्वत पर जाऊँगा।' इस प्रकार रुक्मिणी जी को वर देकर श्रीकृष्ण जी द्वारका की रक्षा की उचित व्यवस्था कर कैलाश को गए।

'रास्ते में गरुड़, देवगण, सिद्ध आदि से सेवित, पूजित, प्रशंसित होते हुए वे नर-नारायण की तपोभूमि बदरीकाश्रम में सन्ध्या समय प्रविष्ट हुए। वशिष्ठ, काश्यप गौतम, अत्रि, याज्ञवल्क्य, वेदव्यास आदि महर्षियों ने उनका स्वागत कर उनकी विधिपूर्वक पूजा की। कृष्ण जी प्रेम पूर्वक सब से मिलकर तथा सब की कुशल-क्षेम पूछ कर आगे बढ़े। गंगा के उत्तर तीर पर एक दिव्य स्थान देख, वहाँ वे समाधिस्थ हो तप करने लगे। कुछ समय बाद रात्रि के समय उस वन में चारो ओर कृष्णजी को शिकारियों के, कुत्तों के, वन-पशुओं के, प्रेत-पिशाचों के बहुत ही भयंकर शब्द सुन पड़ने लगे। देखते-देखते उनके चारों

ओर विकराल भूत, पिशाच, प्रेत, डाकिनी, राक्षसियाँ, शिकारी कुत्ते, वनपशु आदि एकत्र हो गए। शिकारियों के बाणों से और कुत्तों के आक्रमण से बहुत से वन-पशु मर-मर कर और घायल हो-होकर गिरने लगे। इसके साथ ही कृष्ण जी को अपनी स्तुति करते हुए अनेक विकराल शब्द सुन पड़े। सुन पड़ा मानों कोई कह रहा है कि सब पापों को दूर करने वाले, ब्रह्म-तत्व के ज्ञाता, ब्रह्म-स्वरूप, भूभार उतारने के निमित्त अवतार लेने वाले श्रीकृष्ण जी कहाँ है? हम लोगों ने पूर्व-जन्म में घोर पाप किए हैं, इसी कारण हम लोगों को यह अधम पिशाच योनि मिली है, कैसे इससे छुटकारा मिलेगा? दूसरे ही क्षण दो अत्यन्त घोर रूप वाले विकट पिशाच उनके सामने प्रकट हुए और त्रास दिखाते हुए घुड़क कर उन पिशाचों ने उनसे पूछा कि तू मनुष्य होकर यहाँ क्यों आया है? कृष्ण जी ने उन्हें उत्तर दिया कि मैं एक यदुवंशी क्षत्रिय हूँ, यहाँ शिवजी को प्रसन्न करने के उद्देश्य से तप करने के लिए आया हूँ; तुम कौन हो और इस पवित्र आश्रम में पशुओं को मार कर क्यों ऐसा घोर पाप और उपद्रव कर रहे हो, यदि तुम अपना परिचय नहीं बतलाओगे और अपने इस घोर कर्म को नहीं त्यागोगे तो मैं अपने पराक्रम से तुम्हें उचित मार्ग पर लाऊँगा। कृष्ण जी के वचन सुनकर एक पिशाच बोला—'मैं घंटा

कर्ण पिशाच हूँ और यह मेरा छोटा भाई है। हम लोग शिवजी के सेवक और कुबेरजी के मित्र हैं। मैं पहले विष्णु भगवान से द्वेष करता था और उनका नाम न सुन पड़े इस उद्देश से कानों में घंटे मैंने बांध रक्खे थे। मैंने घोर तपकर शिवजी को प्रसन्न किया और उनसे मुक्ति का वर माँगा। शिवजी ने मुझसे कहा कि मुक्ति तो केवल विष्णु भगवान ही दे सकते हैं, तुम बदरीकाश्रम में जाकर तप, साधना, आराधना से विष्णु भगवान को प्रसन्न करो और द्वारका में जाकर श्रीकृष्णजी का दर्शन करो। शिवजी की उसी आज्ञा का पालन करने के लिए मैं कैलाश से यहाँ आ रहा हूँ। मैं विष्णु के यज्ञ के उद्देश्य से ही मृगया द्वारा मांस एकत्र कर रहा हूं। यहाँ तपकर विष्णु भगवान को प्रसन्न करने के अनन्तर मैं द्वारकापुरी को जाऊँगा और वहाँ भूभार उतारने के लिए कृष्ण-रूप से प्रकट होने वाले भगवान का दर्शन करूँगा।'

'यह कहकर उस पिशाच ने बहुत-सा मांस खाया एवं बहुत-सा रुधिर पिया और फिर जल द्वारा अपने शरीर और मुख को पवित्र कर कुशों के आसन पर बैठ उसने भगवान का ध्यान करना प्रारम्भ किया। उसका मन निरन्तर भगवान में लगा रहता था इस कारण शीघ्र ही भगवान उस पर प्रसन्न हो गए। ध्यान में मग्न हो नाना

कृष्णजी ने उठ कर प्रसन्नतापूर्वक सब का यथोचित सत्कार किया। शिवजी ने उनकी स्तुति-प्रशंसा कर एवं उनके करको अपने हाथ से स्पर्श कर कहा—'आपने पुत्र के निमित्त जो तप किया है वह सफल हुआ। मैंने तो पहले ही आपके पुत्र के निमित्त व्यवस्था कर दी थी। पूर्व काल में एक बार मैं घोर तप करने लगा। तब इन्द्र तथा देव-गण बहुत व्याकुल हुए। इन्द्र ने विघ्न डालने के निमित्त कामदेव को भेजा। उसने अनजाने में आकर मुझे क्षुभित किया। मैंने कोप कर उसे भस्म कर डाला। बाद में सब हाल जान कर तथा रति के विलाप से द्रवित होकर मैंने वर दिया कि द्वापर के अन्त में वही कामदेव प्रद्युम्न के रूप में भगवान श्रीकृष्ण जी का पुत्र होगा। इस प्रकार आपके अनुरूप पुत्र की व्यवस्था तो पहले से ही की जा चुकी है। अब आप लोक-कल्याण में लगें।'

'शिवजी को प्रसन्न देख कृष्णजी ने उनकी बड़ी स्तुति की, विधिवत् पूजा-अर्चाकर उन्हें कृतकृत्य कर दिया। शिवजी ने भी दिव्य शब्दों द्वारा भगवान कृष्ण जी की स्तुति करते हुए कहा—'आप ही जगत की उत्पत्ति, पालन और लय करते हैं। आप ही के अंश से उत्पन्न होकर इन्द्र, सूर्य आदि अपना-अपना कार्य करते हुए सृष्टि का पालन करते और विश्व की स्थापना करते हैं। आप

सब में व्याप्त हैं इसी कारण आपका नाम विष्णु है। नार (जल) में शयन करने से नारायण; जीवों का हरण करने से हरि; शं (मंगल) करने शंकर, वृहत होने और सबको वृहत करते रहने से ब्रह्म; मधु (इन्द्रियों) का दमन करने से मधुसूदन; हृषीक (इन्द्रियों) के ईश होने के कारण हृषी-केश, मा (विद्या) के धव (स्वामी) होने के कारण माधव; गौ (वाणी) को जानने के कारण गोविन्द के नाम से आप विख्यात हैं। मुझ में और आप में कुछ भी भेद नहीं है। हम दोनों को जो एक मानता है, जो दोनों में तनिक भी भेद-भाव नहीं समझता वही मुक्ति, सिद्धि और सफलता पाता है। आपकी उपासना मेरी उपासना है और मेरी उपासना आपकी उपासना है।' इस प्रकार भगवान श्रीकृष्ण की स्तुति कर शंकरजी ने वहाँ उपस्थित देवगण एवं ऋषि-मुनियों को उपदेश दिया कि जो शिव और विष्णु को एक मान कर भजते हैं वे ही सच्चे ज्ञानी और भक्त हैं और उन्हीं को सिद्धि प्राप्त हो सकती है। यह उत्तम, रहस्यमय उपदेश सुन, ऋषि-मुनि दोनों की एक भाव से स्तुति-आराधना करने लगे। शिव जी फिर भगवान की स्तुति कर विदा हुए। ऋषि-मुनि, देवगण भी दोनों की स्तुति-वन्दना कर विदा हुए। कृष्ण जी सब से पूजित हो बदरिकाश्रम को गये।'

अध्याय ६१-१०२

पौंड्रक द्वारा कृष्ण-निन्दा, नारद का उपदेश, पौंड्रक द्वारा द्वारका पर चढाई, घोर-युद्ध, पौंड्रक-वध

वैशम्पायनजी बोले—'इसी बीच में राजा पौंड्रक ने अनेक दुष्ट राजाओं को बुला कर एक सभा की और सब के सामने कहा कि कृष्ण छल और घमंड से मेरी बराबरी कर रहा है। मैंने अपना नाम वासुदेव रखा है, इस लिए उसने भी अपना नाम वासुदेव रख लिया है। मेरे पास अमोघ सुदर्शन चक्र, शारंग धनुप, कौमोदकी गदा, नन्दक खड्ग हैं, इस कारण उसने भी इसी नाम के अस्त्र-शस्त्रों को धारण करना प्रारम्भ किया है। उसके बहकाने में पड़ कर यदुवंशी मुझे कर नहीं देते। मैं और सभी राजा महाराजाओं से कर और सेवा लेता हूँ। अब मैं कृष्ण को मार कर उसे उसके दुष्कृत्यों का दण्ड दूँगा और यादवों से भी कर और सेवा लूँगा। उसके इस तरह के प्रलाप को सुन कर अनेक राजा उसे प्रसन्न करने के लिए उसकी बात का समर्थन करने लगे। इसी समय नारद जी देव-लोक से वहाँ आए। पौण्ड्रक ने उनका स्वागत-सत्कार किया और कृष्णजी के विरुद्ध सब बातें बतलाई। नारद

जी ने उससे कहा कि यथार्थ में वासुदेव तो पृथ्वी पर एक ही हैं। तुम्हारा गर्व व्यर्थ है। तुम्हारे ये कृत्रिम अस्त्र-शस्त्र श्रीकृष्णजी के अस्त्र-शस्त्रों के सामने विफल हो जायँगे और कृष्णजी के विरोध से तुम्हारे प्राण संकट में पड़ जायँगे। तुम्हें उचित है कि इस दुष्ट विचार को अपने मन से दूर कर दो। किन्तु बहुत समझाने पर भी जब पौण्ड्रक न माना तब नारदजी ने उससे विदा हो बदरीकाश्रम में जाकर श्रीकृष्ण जी से सब हाल बतलाया।

'इधर एकलव्य आदि राजाओं के साथ बड़ी भारी सेना लेकर पौण्ड्रक द्वारका पर चढ दौड़ा। इस समय रात हो गई थी। रात ही में उसने द्वारका को चारों तरफ से घेर लिया और यह कहकर वह नगर को खुदवाने लगा कि इस पुरी को मैं नष्ट कर डालूँगा, उग्रसेन, वसुदेव आदि यदुवंशियों को दास बनाऊँगा और यहाँ की रानियों को पकड़कर उनसे दासी का काम कराऊँगा। इस प्रकार बकता हुआ वह नगर को नष्ट-भ्रष्ट करने लगा। यह देख उग्रसेन, सात्यकि आदि ने उसे समझा कर वापस करना चाहा, पर वह न माना। तब यदुवंशी भी अस्त्र-शस्त्र लेकर उसका सामना करने के लिए बाहर निकले। दोनों सेनाओं में घमासान युद्ध होने लगा। रात्रि के अन्धकार को दूर करने के लिए हजारों मशालें जला ली गईं। उसी प्रकाश

में दोनों ओर के वीर मार-काट मचाने लगे। सात्यकि और पौण्ड्रक का ख़ूब घोर युद्ध हुआ। एकलव्य और बलरामजी ने डटकर लोहा लेना प्रारम्भ किया। हजारों वीर कट-कटकर पृथ्वी पर गिरने लगे। खून की नदियाँ बह चलीं, लोथों के ढेर लग गए। इसी प्रकार रात भर भीषण मार-काट चलती रही। पौण्ड्रक ने सात्यकि को और एकलव्य ने बलराम को अपने अस्त्र-शस्त्र और छल-बल-द्वारा मारना चाहा, किन्तु रात भर प्रयत्न करने पर भी वे उन्हें परास्त करने में सफल न हुए।

'भीषण युद्ध में ही रात समाप्त हो गई। सूर्योदय हुआ। द्वारका-वासी दूने उत्साह से शत्रुओं का सामना करने लगे। उधर श्रीकृष्ण जी रात भर बदरिकाश्रम में ऋषि-मुनियों के साथ धर्म और लोक-कल्याण की चर्चा करते रहे। प्रातःकाल होते ही वे सबसे विदा ले गरुड़ पर सवार हो द्वारका की ओर चले। द्वारका के समीप पहुँचने पर उन्हें युद्ध का कोलाहल सुन पड़ा। कुछ आगे बढ़ने पर उन्हें पौण्ड्रक और सात्यकि का भयंकर युद्ध देख पड़ा। उन्होंने वहीं से गरुड़ को विदा कर दिया। फिर दारुक सारथी द्वारा लाए गए अपने दिव्य रथ पर चढ़ करके वे रणभूमि में आए। उन्हें देखकर पौण्ड्रक अनेक प्रकार के दुर्वचन कहने लगा। श्रीकृष्णजी ने हँसकर सात्यकि को

एक ओर हटा पौण्ड्रक से युद्ध करना प्रारम्भ किया। पौण्ड्रक ने बड़ा पराक्रम दिखलाया, विजय के लिए उसने बड़ा प्रयत्न किया। उसने अपने सभी अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग किया, किन्तु कृष्णजी के सामने उसकी एक न चली। उन्होंने पौण्ड्रक के सभी अस्त्र-शस्त्रों को एक-एक करके काट डाला। फिर अपने सुदर्शन चक्र से उसके भी प्राण हर लिए। पौण्ड्रक के साथी दैत्य, दानव और राजागण अपने प्राण लेकर भाग गए। एकलव्य भी बलरामजी के सामने से भागकर किसी गुप्त स्थान में जाकर छिप गया। विजय प्राप्त कर सबको लिये हुए कृष्णजी ने सानन्द द्वारका में प्रवेश किया। नगर में खूब आनन्द-उत्सव मनाया गया। सभा में उग्रसेन, वसुदेव आदि घण्टाकर्ण की भक्ति और मुक्ति, कृष्ण जी के उग्र तप और वरदान, एवं शिवजी की कृपा, स्तुति, एकात्मभाव आदि की कथाएँ सुनकर बहुत प्रसन्न हुए।'

अध्याय १०३-१२९

हंस-डिंभकोपाख्यान, राजा-ब्राह्मण का तप द्वारा पुत्रपाना, हंस-डिंभक को वर; दुर्वासा की दुर्दशा, कृष्ण जी से शिकायत, जनार्दन की भक्ति, हंस-डिंभक-बध

जनमेजय ने हंस-डिंभक के युद्ध के सम्बन्ध में प्रश्न

किये। वैशम्पायन जी बोले—'शाल्व वंश में ब्रह्मदत्त नामक पवित्र आत्मा, दयामय, जितेन्द्रिय, ब्रह्मज्ञ, वेदवित, यज्ञ पर, दानी, विद्वान-सेवी राजा हुए। महा-योगी, वेद-वेदान्त का जानने वाला, कर्मनिष्ठ मित्रसह नामक ब्राह्मण राजा का बड़ा मित्र था। किन्तु दोनों में से किसी के भी पुत्र न हुआ। तब राजा ने शिव जी की और ब्राह्मण ने विष्णु भगवान की आराधना की। शिव जी ने प्रसन्न होकर राजा को हंस-डिभक नामक दो पुत्र दिये और विष्णु भगवान ने ब्राह्मण को जनार्दन नामक एक पुत्र प्रदान किया। तीनों साथ-साथ खेल कर बड़े हुए और विधि पूर्वक अध्ययन कर शस्त्रों और शास्त्रों में पारांगत हो गए। बड़े होने पर हंस और डिंभक ने तप द्वारा शिव जी को प्रसन्न कर वर मांगा कि हमें देवता, दानव आदि कोई न जीत सके, हमें रौद्र, ब्रह्मशिर, माहेश्वर आदि अमोघ अस्त्र प्राप्त हो जॉय, हमारे कवच और धनुष अभेद्य रहें और आपके गण सदा हमारी रक्षा करते रहें। शिव जी ने तथास्तु कह उन्हें मन चाहा वर दिया और भृंगी, रिटी, कुण्डोदर, विरूपाक्ष नामक गणों को उनकी रक्षा के निमित्त नियुक्त कर दिया। इधर जनार्दन ने भी विष्णु भगवान की आराधना कर अलौकिक शक्ति प्राप्त की। तीनों के घर लौटने पर सब ने बड़ी खुशी मनाई।

यथा समय तीनों का सुन्दरी स्त्रियों से विवाह हुआ। तीनों धर्म पूर्वक जीवन विताते हुए सुखोपभोग करने लगे।

'एक बार हंस और डिंभक अपने मित्र जनार्दन को साथ ले पुष्कर के पास वन में शिकार खेलने गए। बहुत देर तक सिंध, व्याघ्र, वराह, मृग आदि को मारते हुए वे वन में घूमते रहे। अन्त में थककर तीनों ने पुष्कर के तालाब में सुख पूर्वक स्नान किया। किनारे पर कुछ ऋषि मुनि वेदों का पाठ करते हुए उत्तम यज्ञ कर रहे थे। स्नान कर तीनों यज्ञ शाला में गए। ऋषि-मुनियों ने उनका यथोचित सत्कार किया। कुछ समय बाद हंस-डिंभक ने ऋषि-मुनियों से कहा कि हम अपने पिता को दिग्विजय कर राजसूय-यज्ञ करावेगे, आप उस यज्ञ में अपने शिष्यों सहित अवश्य पधारे। ऋषि-मुनियों ने उनकी प्रार्थना स्वीकार करली। उनसे विदा होकर हंस-डिंभक आगे चले। पुष्कर के उत्तर की ओर उन्हें दुर्वासा जी का आश्रम मिला। वहाँ कोपीन पहने एक तपस्वी देख पड़ा। उसकी बढ़ी हुई जटाएँ, उन्मत्त वृति और त्याग भावना को देख कर हंस-डिम्भक के मन में यह बात बैठ गई कि यह गृहस्थाश्रम को छोड़, लोगों को ठगने के लिए यती का रूप बना कर यहाँ बैठा है, इसे दण्ड देकर सीधे रास्ते पर लाना चाहिए और सब आश्रमों का पालन

करने वाले गृहस्थाश्रम की मर्यादा की रक्षा करनी चाहिए। यह सोच कर उन्होंने उस तपस्वी से कहा—'यह कैसा ढोंग तुमने कर रक्खा है ? यह कौन-सा आश्रम है ? तुम क्यों यथार्थ धर्म को छोड़ कर स्वयं नष्ट हो रहे हो और अपने साथ दूसरों को भी नष्ट कर रहे हो। क्या तुमने समझ लिया है कि दण्ड देकर तुम्हें कोई उचित मार्ग पर न ला सकेगा ? हमारे शासन में तुम इस प्रकार धर्म-भ्रष्ट नहीं हो सकते। तुम इस आडम्बर को छोड़कर गृहस्थाश्रम का विधिवत पालन करो। इसी में कल्याण है।'

'उनकी यह धृष्टता देख जनार्दन बहुत भयभीत हुआ। वह जानता था कि जिनको हंस-डिभक इस प्रकार डाट रहे हैं वे तीनों लोकों को भस्म करने की शक्ति रखने वाले दुर्वासा जी हैं। उनके शाप के भय से जनार्दन काँप उठा। वह दुर्वासा जी का प्रभाव बतला कर हंस-डिभक को उद्दण्ड भाव को छोड़ कर दुर्वासा जी से क्षमा माँगने के लिए समझाने लगा। फिर उसने विनम्र वचनों से दुर्वासा जी को शान्त करने की चेष्टा की। दुर्वासा जी ने हंस-डिभक से कहा कि मैं तुम्हें भस्म कर सकता हूँ, किन्तु मैं क्रोध कर अपने तप को नष्ट न करूँगा, तुम्हारी इस अविनय के लिए धर्म-रक्षक भगवान श्रीकृष्णचन्द्रजी तुम्हें उचित दण्ड देंगे। दुर्वासा जी के वचनों को सुन कर हंस-

डिंभक ने उन्हें पकड़ कर खूब झकझोरा और उनकी कोपीन को उतार कर फाड़ डाला। फिर दोनों ने, जनार्दन के बहुत मना करने पर भी उस आश्रम के अन्य यती, सन्यासियों के कमण्डलों को फोड़ डाला, कोपीनों को फाड़ डाला, अन्य पदार्थों को तोड़-फोड़ कर नष्ट-भ्रष्ट कर डाला। आश्रम में रहने वाले सभी यती-सन्यासी डर कर वहाँ से भाग गए। तब हंस-डिंभक ने उसी आश्रम में बहेलियों से मांस पकवा कर खाया। फिर आश्रम को अच्छी तरह से नष्ट-भ्रष्ट कर वे अपनी पुरी को लौट गए। जनार्दन ने बड़ी दीनता से दुर्वासाजी को समझा कर शान्त किया। दुर्वासा जी ने उसे यह वर देकर विदा किया कि तुम्हें शीघ्र ही साधु-गति प्राप्त होगी। दुर्वासा जी से विदा होकर जनार्दन अपने घर चला आया। इधर अपने शिष्यों के साथ दुर्वासा जी श्रीकृष्ण जी के पास गए और सब हाल बतलाकर एवम् टूटी-फूटी वस्तुएँ दिखलाकर उनसे उचित व्यवस्था करने के लिए कहा। कृष्णजी ने दुःखी हो ऊँची साँस लेते हुए कहा—'आप शान्त हों। इसमें मेरा दोष है। मुझे पहले ही कुछ व्यवस्था कर देनी चाहिए थी। हंस और डिंभक शिवजी के वरदान के कारण मद में चूर हो रहे हैं। दूसरे जरासंध उनका सहायक है। इसी से वे इतना उपद्रव करने

लगे हैं। किन्तु मैं उन्हें शीघ्र ही उचित दण्ड दूँगा।' इस प्रकार दुर्वासाजी को समझा कर कृष्ण जी ने उन्हें नवीन वस्त्र, कमंडल आदि सभी पदार्थ दिये और इच्छा-भोजन कराके प्रसन्न कर उन्हें विदा किया।

'इधर हंस-डिभक ने अपने पिता से कहा कि आप राजसूय-यज्ञ की दीक्षा लीजिए, हम लोग दिग्विजय कर आप को राजसूय-यज्ञ करायेंगे। उनकी बात सुनकर जनार्दन ने कहा कि ऐसा दुःसाहस करना उचित न होगा, इस समय परशुराम को जीतने वाले भीष्म, देव-दानव आदि सभी को जीतनेवाले कृष्ण, महाबली जरासंध, अप्रमेय बलवाले बलराम आदि विद्यमान हैं, उन सबको जीत लेना सरल नहीं है। यह सुन हंस-डिभक ने बिगड़ कर कहा कि कृष्ण, बलराम, भीष्म आदि कोई भी हम लोगों के सामने नहीं टिक सकते। और जरासंध तो हमारे हितू और सम्बन्धी ही हैं; वे हमें सहायता ही देंगे। यह कहकर हंस-डिंभक राजसूय-यज्ञ की तैयारी करने लगे। उन्होंने जनार्दन को यह कहकर श्रीकृष्णजी के पास भेजा कि तुम यादवों के साथ उचित कर तथा नमक लेकर हमारी सेवा में उपस्थित हो जाओ नहीं तो हम तुम्हें दण्ड देंगे। ब्राह्मण विवश होकर हंस-डिभक के दूत के रूप में श्रीकृष्णजी के पास गया। रास्ते में श्रीकृष्णजी के भुवन-मोहन रूप,

दिव्य अस्त्र-शस्त्र, अलौकिक गुण, अद्भुत कार्यों-लीलाओं का ध्यान करता हुआ, नाना प्रकार की भावनाओं के प्रवाह में बहता हुआ वह द्वारका पहुँचा। उसका आगमन सुन कृष्णजी ने उसे उचित वास-स्थान दिया और यथा समय राज-सभा में बुलाकर उससे कहा कि तुम बिल्कुल निडर होकर सब बातें कहो, तुम्हें मैं अभय करता हूँ। जनार्दन ने सभा के बीच में राजसूय-यज्ञ की बात बतलाकर कहा कि हंस-डिंभक ने आपसे कर और लवण माँगा है। उसकी बात सुनकर कृष्णजी ने हँसकर कहा कि हम अवश्य ही हंस-डिभक को कर देंगे। कर की बात सुनकर बलराम, सात्यकि आदि तालियाँ बजाकर हँसने और हंस-डिंभक की ढिठाई पर आश्चर्य करने लगे। श्रीकृष्णजी ने कहा—'हे विप्रवर! तुम हंस-डिंभक के पास जाकर कह दो कि हम अपने बाणों की नोकों और तलवार की धार के द्वारा ही उन्हें कर देंगे। वे शाल्व नगर, पुष्कर, प्रयाग, द्वारका, जहाँ चाहें अपनी सेना और सहायकों को लेकर हमारे बाणों का कर प्राप्त करें।'

श्रीकृष्ण जी ने सम्मान के साथ जनार्दन को विदा किया। उन्होंने उसके साथ सात्यकि को भी भेज दिया। हंस-डिंभक ने सात्यकि को अपनी सभा में बड़े आदर सहित बैठाला, फिर उन्होंने जनार्दन से द्वारका के समाचार

पूछे। जनार्दन ने कृष्णचन्द्रजी के रूप, गुण, पराक्रम और अद्भुत कर्मों की भूरि-भूरि प्रशंसा की और कहा कि आप लोग सर्व-जन-हितकारी श्रीकृष्णचन्द्रजी से विरोध करके उचित काम नहीं कर रहे हैं। हंस-डिभक ने क्रोध कर जनार्दन से कहा कि तुम हमारे शत्रु उस गोप की विरुदावली के बखान में ही अब अपना गौरव समझने लगे हो, इस कारण तुम अब हमारे यहाँ नहीं रह सकते। यह कह उन्होंने सात्यकि से आने का कारण पूछा। सात्यकि ने कहा कि मैं केवल यही कहने आया हूँ कि भगवान श्रीकृष्ण जी के रहते कोई दूसरा राजसूय-यज्ञ नहीं कर सकता। तुम देव-दानवों के जीतनेवाले श्रीकृष्णजी से कर माँगते हो, इससे बढ़कर तुम्हारी और क्या धृष्टता हो सकती है। तुम जहाँ भी कहो वहीं बाणों द्वारा श्रीकृष्णजी तुम लोगों का मद चूर करने के लिए प्रस्तुत हैं। हंस डिभक ने दर्प से उत्तर दिया कि गोप कृष्ण-बलराम तो क्या इन्द्र, यम आदि भी हमारे अस्त्र-शस्त्रों को सहन नहीं कर सकते, हम लोग दूत को कुछ नहीं कहते, हम तो एक-दो दिन में पुष्कर में अपने दिव्य अस्त्रों द्वारा कृष्ण का घमंड चूर करेंगे, तुम जाकर कह दो कि यदि उस गोप को साहस हो तो पुष्कर में आकर हमारा सामना करे। सात्यकि ने उत्तर दिया कि

सबके स्वामी, अमोघ शक्ति वाले श्रीकृष्णजी को तो चक्र उठाने का कष्ट ही न करना पड़ता, उनका साधारण सेवक, मैं ही तुम लोगों को उचित दण्ड देता और अपने वाणों से तुम्हें कर चुकाकर यमलोक भेजता, किन्तु दूत होने के कारण इस समय धर्म के बन्धन में पड़कर कुछ नहीं कर सकता; पुष्कर के युद्ध ही में तुम्हें भगवान श्रीकृष्णजी के यथार्थ वल का पता चलेगा। यह कहकर सात्यकि रथ पर चढ़कर चले गए।

'द्वारका में जाकर सात्यकि ने कृष्णजी से सब हाल बतलाया। श्रीकृष्ण जी ने युद्ध आवश्यक जान, अपनी सेना को सजाकर पुष्कर की यात्रा की। उधर हंस-डिभक भी अपनी असंख्य सेना लेकर पुष्करक्षेत्र में आए। विचक्र और डिम्भ नामक दो महा पराक्रमी दानव थे। वे लाखों विकराल दानवों को लेकर हंस-डिभक की सहायता के लिए आ पहुँचे। यथा समय दोनों सेनाओं में युद्ध छिड़ गया। भीषण मारकाट प्रारम्भ हो गई। हजारों आदमी कट-कटकर गिरने लगे। दैत्य घोर रूप धारण कर यादवों को नष्ट करने लगे। हंस, डिभक, विचक्र, डिंभ, टिडिंबक, विरुपाक्ष आदि घोर रूप धारण कर यदुवंशियों को मारने और उग्रसेन, वसुदेव आदि को त्रास देने लगे। विकट युद्ध के अनन्तर बलराम जी ने हिडिंब नामक राक्षस

राज को मार गिराया। उसकी यह हालत देख दूसरे दानव अपना प्राण लेकर भाग खड़े हुए। इसी समय सूर्यास्त हो गया। युद्ध रुक गया।

'हंस-डिंभक अपनी सेना और सहायकों को लेकर रात के समय ही गोवर्धन पर्वत पर चले गये। प्रातःकाल कृष्णजी भी सात्यकि, बलराम आदि के साथ गोवर्धन पर गए और दानवों से युद्ध करने लगे। घोर संग्राम के अनन्तर श्रीकृष्णजी ने हंस को जमुना में फेंक दिया। जमुना में गिरते ही हंस अदृश्य हो गया। कुछ लोगों का कहना है कि वह भगवान का प्रहार न सह सकने के कारण जमुना में गिरते ही मर गया, और कुछ का विश्वास है कि वह उस प्रहार से पाताल में जाकर गिरा और वहाँ सर्पों ने उसे नष्ट कर डाला। हंस को अदृश्य होते देख उसका भाई डिंभक युद्ध छोड़ अपने भाई को ढूढ़ने के लिए यमुना में गोते लगाने लगा। अन्त में कृष्ण जी के प्रताप से वह भी देखते-देखते नष्ट हो गया। उन दोनों के नष्ट होते ही उनकी सारी सेना, उनके सभी सहायक या तो नष्ट हो गये, या भाग गये। इस प्रकार दुष्टों का दमन कर कृष्णजी ने जगत का कल्याण किया, पृथ्वी का भार हलका हुआ।'

अध्याय १३०-१३१

नन्द-यशोदा-गोपी-गोपो से भेंट; मुनियों द्वारा स्तुति

वैशम्पायनजी बोले—'विजय प्राप्त करने के अनन्तर श्रीकृष्णजी गोवर्धन पर विश्राम करने लगे। उनका आगमन सुन नन्द, यशोदा, गोपी, गोप उनसे मिलने के लिए गए। कृष्ण-बलदेव सब से मिल कर बहुत प्रसन्न हुए। यशोदा के लाये हुए दधि-माखन को उन्होंने बड़े प्रेम से खाया। सब की कुशल-क्षेम पूछ कर उनका बड़ा आदर-सत्कार किया। फिर सब को मन-वांच्छित वर और वस्तुएँ देकर सादर सबको विदा किया।

'वहाँ से श्रीकृष्णजी पुष्कर गए। हंस-डिंभक आदि का नाश तथा दानवों की पराजय सुनकर ऋषि-मुनि बहुत प्रसन्न हुए। कृष्णजी को स्तुति करते हुए उन्होंने कहा कि आप ही ब्रह्म, रुद्र, विष्णु और यज्ञ, वेद, तप हैं; आप ही जगत का उत्पादन और पालन करने वाले हैं; आप ही दुष्टों से संसार की रक्षा करते हैं; आप विश्व-मूर्ति हैं। ऋषि-मुनियों को प्रसन्न तथा अभय कर श्रीकृष्णजी द्वारका को गए और वहाँ लीलापूर्वक धर्म की रक्षा करते हुए निवास करने लगे।'

अध्याय १३२

महाभारत-हरिवंश सुनने के फल

जनमेजय ने महाभारत (एवं हरिवंश-पुराण) को सुनने के फल तथा विभिन्न दानों के पुण्य के सम्बन्ध में प्रश्न किये। वैशम्पायन जी बोले—'भूभार उतारने के निमित्त भगवान एवं देवगण ने पृथ्वी पर आकर लीलाएँ कीं और वे यथा समय अपने-अपने लोकों को चले गये। उन्हीं के दिव्य कार्यों का वर्णन महाभारत में है। जो उसे भक्ति पूर्वक सुनता है उसको सभी मनोकामनाएँ पूरी होती हैं और उसे सहज में स्वर्ग की प्राप्ति हो जाती है। इसके जितने ही अधिक पाठ सुने जाते हैं, उतने ही दिव्य उत्तमोत्तम लोकों की प्राप्ति मनुष्य को होती है और उतने ही उत्तम सुखोपभोगों की उपलब्धि होती है। वेदज्ञ, चतुर, कर्मनिष्ठ, सदाचारी, उदार-प्रकृति वाले विद्वान की पूजा कर उससे नियमित रूप से महाभारत की कथा सुननी चाहिए और उसे सभी प्रकार के उत्तम पदार्थों को दान में देकर संतुष्ट करना चाहिए। महाभारत के प्रत्येक पर्व के आदि-अन्त में विशेष-विशेष वस्तुओं का दान करना चाहिए। हरिवंश-पुराण के समाप्त होने पर विधिवत दान करना चाहिए। इसके श्रवण से मनुष्य सभी पापों से मुक्त होकर

उत्तम गति को तथा पुत्र-धन-रत्न-सफलता-सुख को प्राप्त करता है। महाभारत सब से श्रेष्ठ, सब से उत्तम ग्रंथ है। इसमें धर्म की विशेष रूप से व्याख्या की गई है। इसे पढ़ने-सुनने का सभी को अधिकार है। इसे सुन कर मनुष्य को अनायास ही ज्ञान, उत्तम गति और भगवान की प्राप्ति हो जाती है।'

अध्याय १३३

त्रिपुर-वध वर्णन

जनमेजय के पूछने पर वैशम्पायनजी बोले—'पूर्व समय में ब्रह्माजी की कृपा से अभेद्य त्रिपुरों का प्रादुर्भाव हुआ। वे आकाश-मार्ग से सभी स्थानों में जा सकते थे। उनमें स्वर्ग से भी बढ़कर सुख-ऐश्वर्य की सभी प्रकार की दिव्य सामग्री भरी हुई थी। उनमें रहकर दानवगण अभिमान से अंधे हो गये। उन्होंने धर्म-कर्म, यज्ञ-अनुष्ठान, तप-जप आदि बन्द कर दिये और वे जनता पर घोर अत्याचार करने लगे। तीनों लोकों में त्राहि-त्राहि मच गई। देवगण तथा ब्रह्माजी के प्रार्थना करने पर शंकर जी ने उन पुरों को नष्ट करने का विचार कर लिया। उस त्रिपुरी पर देवगण ने घेरा डाला। खूब लोम-हर्षण युद्ध हुआ। अन्त में शिवजी ने दिव्य बाणों द्वारा त्रिपुर

को नष्ट कर दि　　नों　　　र हुआ।
शुभ कर्म फिर प्रारंभ हो गये।

अध्याय १३४-१३५

हरिवंश-वृत्तान्त-संग्रह, हरिवंश-श्रवण-फल

वैशम्पायनजी बोले—'हरिवंश-पुराण की कथाओं की सूची क्रम से इस प्रकार है:—आदि सृष्टि का वर्णन, भूतों की उत्पत्ति, पृथु-कथा, वैवस्वत-वंश, धुन्धुमार-वध, इक्ष्वाकु वंश, पितृकल्प, ययाति-वंश, कृष्ण-जन्म-चरित-लीलाएँ, कंस आदि वध, यादवोत्कर्ष, जरासंध-युद्ध, शृगाल-नरक-कालयवन आदि वध, रुक्मिणी-विवाह, द्वारका-निवास, भानुमती हरण; धन्योपाख्यान, बाणासुर-युद्ध, कैलास-यात्रा, पौंड्रक-हंस-डिंभक वध, भारत-श्रवण-माहात्म्य, त्रिपुर-वध, हरिवंश-श्रवण फल।

'जो इसे श्रद्धा पूर्वक, विधि-नियम-सहित सुनता है उसे उत्तम गति, श्रेष्ठ सन्तान, दिव्य पदार्थ एवं सुख सफलता-समृद्धि-सिद्धि आदि की प्राप्ति होती है। श्रीकृष्ण जी के विमल यश को सुनने से कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता।

(भविष्य-पर्व समाप्त)

—: हरिवंश-पुराण समाप्त :-

कृष्ण-कमल

फ्रांस की राज्य-क्रान्ति के बाद ही वहाँ के शाही खान्दान और उच्च वर्ग के स्त्री-पुरुषों को धड़ाधड़ प्राण दण्ड दिया जाने लगा। ऐसे भीषण काल में कृष्ण-कमल नामक वीर कैसे अपूर्व साहस से वीरता पूर्वक लोगों की रक्षा करता था इसका अपूर्व वर्णन है। मूल्य १।)

प्रेमी-विद्रोही

(आकर्षक टाइटिल, १।))

घटना-चक्र में पड़ कर किस प्रकार एक उत्कृष्ट देश-प्रेमी, राष्ट्र-सेवक एक देश-द्रोही की रक्षा करने के लिए बाध्य होता है, सौंदर्य कैसे-कैसे नाच नचाता है। बनावटी देश-भक्ति से कैसे-कैसे जघन्य काण्ड किये जा सकते हैं। मित्रता के लिए कैसे मनुष्य अपनी जान तक देने के लिए तैयार हो जाता है। इन सब का इसमें बड़ा ही मनो-मोहक वर्णन है। मूल्य १।)

जीत में हार

(मौलिक शिक्षा-प्रद नाटक, मूल्य ||।))

किसान ज़रा-ज़रा-सी बात के लिए कैसे मुकदमे खड़े कर देते हैं, दलाल कैसे उन्हें उभाड़ते हैं और अदालतों में उनकी कैसी दुर्दशा होती है, उनके बाल-बच्चे कैसे दाने-दाने को मारे-मारे फिरते हैं इनका इसमें सजीव वर्णन है।

दुनिया का चक्कर दस दिन में

(मोहक गेट-अप, मूल्य १।))

कैसे एक कंगाल लड़का अमरीका जाकर हवाई जहाज़ बनाना सीखता है, कैसे वह 'दस दिन की दौड़' में भाग लेता है, रास्ते में कैसे चकनाचूर होने से, गोरिला के आक्रमण से, जंगलियों के हमलों से, चट्टानी बमों से अपनी और हवाई जहाज की रक्षा करता है, अपने शत्रुओं के प्राण महासागर में बचाता है और कैसे दस दिन में दुनिया का पूरा चक्कर काट कर विजयी होता है। साहस पूर्ण कार्यों का तो महाभारत ही है।